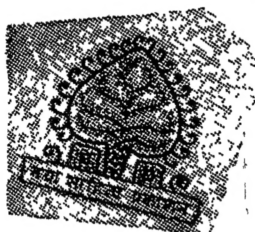
हंसा जाई अकेला

मार्कण्डेय की कहानियों का तीसरा संग्रह



नया साहित्य प्रकाशन
२ डी, मिंटो रोड, इलाहाबाद



प्रथम-संस्करण : फरवरी, १९५७
द्वितीय-संस्करण : अक्टूबर, १९५७
तृतीय-संस्करण : मार्च, १९६०
पुस्तक संख्या : ३
मूल्य : तीन रुपये
प्रकाशक : नया साहित्य प्रकाशन
२-डी, मिंटोरोड, इलाहाबाद
मुद्रक : भार्गव प्रेस,
बाई का बाग, इलाहाबाद

श्री नागार्जुन को

अनुक्रम

*

कहानी मे जब हम 'नयी' विशेषण लगाते है, तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम समसामयिक कथाकारों द्वारा दिये गये किसी विशेषण का प्रयोग कर रहे है। नयी कहानी से हमारा मतलब है उन कहानियों से, जो सच्चे अर्थों मे कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिए उपयोगी अथवा महत्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित है या जीवन के नये सत्यों को एकदम नयी दृष्टि से दिखाने मे समर्थ हैं। इसलिए आसानी से यह कहा जा सकता है कि हर समसामयिक कहानी नयी नहीं है, चाहे लेखक नया ही क्यों न हो, अथवा एक नये लेखक की ही एक कहानी नयी हो सकती है, दूसरी पुरानी।

कथानक की दृष्टि से विचार करने पर, नये-पुराने का काल सम्बन्धी अतर कई कारणो से कभी कम, कभी ज्यादा होता है। इन कारणों में, किसी देश की जनता के सामाजिक-राजनैतिक जीवन के परिवर्तन-क्रम या किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रभाव का भी हिस्सा हो सकता है। क्योंकि जनता का जीवन ही वह धरातल है जहाँ लेखक अपने अनुभव संगठित करता है और सामान्य जीवन की भाव-भूमि पर ही उसकी संवेदनाएँ निर्मित होती है। जो लेखक जितनी ही गहराई से इन बदलती हुई भाव-भूमियो को पकड़ पाता है, वह उतनी ही तीव्रता से जीवन की सवेदनाओं को संचित कर अपने अनुभव मे वृद्धि करता जाता है। इसलिए, कथानक की नवीनता इसमें नहीं है कि उसमे किसी अछूते

भू-भाग के अजीब से प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमे है कि साधारण मानवीय जीवन मे वह कौन-सा विशेष नयापन है जो हमारी सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन-सा ऐसा पहलू है, जो साहित्य मे अब तक अछूता है। उदाहरण के लिए, प्रेमचंद की 'पूस की रात' और यशपाल की 'फूलो का कुर्त्ता' नामक कहानियो को लीजिए। दोनों कहानियों मे वर्णित सत्य हर पाठक को उद्वेलित करते है, पर कलाकार की दृष्टि केवल सत्य को बतला देने ही मे नहीं है। वह सत्य को सजीव बना कर, कुरूपता को भी सौन्दर्य से भर देता है। जहाँ एक ओर, विज्ञान की प्रगति के साथ व्यवसाय के केन्द्रीकरण और मशीन-युग के आगमन के कारण भूमि-हीन किसान की धरती मे गड़ी हुई जड़े उखड़ने का चित्रण कर प्रेमचन्द ने किसान की दरिद्रता का हृदय-द्रावक खाका खींचा है, वहीं दूसरी ओर यशपाल ने बाल विवाह और पर्दे की भोंडी प्रथा की सड़ाँध पर पड़े हुए ग़लीज नक़ाब को उठा कर हमे अपनी सामाजिक दुर्नीति पर शर्म से गड़ जाने के लिए मजबूर कर दिया है। प्रेमचन्द ने जीवन के एक परिवर्तित होने वाले पहलू को देखा है तो यशपाल ने केवल एक अनदेखे जीवन-चित्र पर से पर्दा हटा दिया है।

कहानी मे नवीनता का आग्रह विशिष्ट प्रकार के जीवन पर न हो कर, जीवन के विशिष्ट प्रकार पर होना चाहिए। गाँव की कहानी लिखना ही कलात्मक माध्यम की नयी खोज नहीं कहा जा सकता, बल्कि गाँव के जीवन मे नयी दृष्टि का समावेश करना तथा वहाँ के जीवन की परिवर्तित दिशा को पुरानी पीठिका मे देख पाना ही नयी कहानी के

सृजन में सहायक हो सकता है। शहरी, सुकुमार कन्या को, गृह-कार्यों में पिसी, रूखडी और श्रमित किसान बाला के हृदय मे बिठा कर, गाँव की नयी कहानी का सृजन नहीं हो सकता अथवा बोली के शब्दों के बेमेल पैबंद लगा कर, भाषा के जोर पर, कोई किसान की कठोर जिन्दगी का सवेद्य धरातल नहीं छू सकता। उसके आदर्शों को देख पाने के लिए लेखक मे पैनी दृष्टि और अनुभव की गहराई के साथ उसकी सामाजिक परिस्थितियों को सही दृष्टि से देखने की क्षमता भी आवश्यक है। इसलिए, कथानक की मौलिकता अथवा कथा की सफलता जाँचने के लिए गाँव-शहर मे बाँट कर, कहानी के खाते बनाना उचित नहीं जान पड़ता।

'कहानीपन' कहने मे, कल्पना की ध्वनि ज़्यादा मिलती है, यथार्थ की कम। हो सकता है इस कथन से कई लोगों की सहमति न हो सके, पर मुझे लगता है, आधुनिक युग में सभी जागरूक कथाकारों के लिए, कहानी कल्पना की बुनावट न हो कर, जीवन का एक यथार्थ अश बन गयी है। उसके कथानक जीवन की भौतिकताओं की तरह ही कठोर एवं सत्य होने लगे हैं; और उसका शिल्प भी समस्त मानवीय व्यवहार की परम्पराओं का निर्वाह करने लगा है। एक तरह से देखे तो जीवन में जो होता है और अत्यत सामान्य रूप मे होता है—उसकी खोज हम कहानी में करने लगे है। पहले लेखक कल्पना से कहानी गढ़ता था पर अब कल्पना से उसमें रग भरता है—यथार्थ को और भी चटख और प्रभावशाली बनाता है। कल्पना-प्रसूत कथानक नये लेखक को अस्वाभाविक लगते हैं और यह उसकी प्रगति का एक मुख्य लक्षण है। लेकिन यह एक हैरत की बात है कि हिन्दी मे प्रेमचन्द के बाद, एक

बहुत बडे अरसे तक कहानी कल्पना का पल्ला पकड़े रही, जब कि स्वयं प्रेमचन्द ने उसे कठोर यथार्थ की भूमि पर ला उतारा था। यहाँ तक कि यशपाल ने भी अपनी कहानियों के चमत्कृत करने वाले अतिम सूत्रो को जड़ने के लिए काल्पनिक जीवन-खंडो के कतिपय कथानकों का उपयोग किया है। सत्य की जबान तो उन्होने पा ली, पर उसकी देह के दर्शन उन्हें कभी-कभार ही हुए है। मसलन 'पाँव तले की डाल' और 'अस्सी बटे सौ' के अंतिम नुस्खे को दो विभिन्न कथानकों मे जड़ कर, उन्होंने एक ही सत्य को दो देह प्रदान कर दी हैं।

नये लेखक के पास जीवन के अछूते चित्रों का भाडार है और यह उसका गुण और दोष दोनों बन रहा है। घर मे बहुत सारा सामान होने पर भी यदि घर के मालिक मे सौंदर्यानुभूति न हो तो अपनी समझ से स्टूल को सोफ़े पर रख कर वह कोई अनुचित काम न करेगा। इसीलिए, सामान के साथ उसको सजावट की दृष्टि और सामान की उपयोगिता तथा उसके गुणात्मक भेद का ज्ञान उस आदमी के लिए और भी ज़रूरी हो जाता है, जिसके पास सामान विपुल मात्रा में हो। नये लेखकों मे से बहुतों के पास कच्चा माल है, यानी जीवन के नये-नये, अछूते खड-चित्र वे सामने ला सकते हैं पर उनकी उपयोगिता, उनकी तराश, उनका वजन तथा उसे ठीक से देख और पहचान पाने की दृष्टि, उनके पास कम है। यही कारण है कि इतनी सारी नयी कहानियाँ एक दूसरे मे घालमेल हो गयी हैं और उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनने के रास्ते पर बहुत धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

वैसे नये युग मे महान अभिव्यक्तियों के कला-निर्माण विरल होते जा रहे है, जिसे हर सजग और ईमानदार कलाकार महसूस करता है।

उसे लगता है कि विज्ञान की प्रगति ने जहाँ उसे समृद्ध एवं सुसंस्कृत बनाया है, वहीं उसकी आधारभूत वैयक्तिक आस्था का ह्रास भी किया है। वह अपने सवेद्य के प्रति उतना आस्थावान नहीं रह गया है और इसका सबसे बडा कारण है हमारा समय, जिसे हम आसानी से मूल्यों के विघटन का काल कह सकते है। राम और कृष्ण के समान अन्यान्य सत्ताविभूषित व्यक्तियों को वर्ण्य के रूप में स्वीकार करने मे, पीढ़ियों की सामाजिक मान्यता तथा यश और धन सब सुलभ होते थे, लेकिन हमारा नया सवेद्य जनतंत्र का गरीब जन है, जिसके पास न धन है, न यश, न पीढ़ियों की परम्परागत सामाजिक प्रतिष्ठा से विभूषित नयी मर्यादा। ऐसे उलझे हुए, कठिन वर्ण्य से मित्रता निभाना कितना कठिन है, इसे समझने के लिए पूरे दो युगों की सम्पूर्ण संयोजित चेतना का उपयोग करना पडेगा।

रूप-विधान और शिल्प के चमत्कार की कथरी ओढने वाले ससार के अधिकांश कलाकारों एवं साहित्यिकों की मनोवृत्ति का रहस्य यही है कि आधुनिक मानव की दुरूह एवं अनिश्चित मनोभूमि का धरातल छू पाने मे असमर्थ हो कर वे चिन्तन के रुख को ही दूसरी ओर मोड़ देना चाहते है। नये कथाकार के सामने यही एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि वह किस तरह इन नयी, ऊबड़-खाबड़, दुर्गम भाव-भूमियों का परिवहन कर यथार्थ तक पहुँचे, उसको पहचाने और नयी कला-कृतियों का सृजन करे!

इन थोडे-से बेतरतीब विचारो के साथ, 'हंसा जाई अकेला'—मेरी सात कहानियों का संग्रह प्रस्तुत है। हो सकता है उपर्युक्त कसौटी पर ये कहानियाँ खरी न उतरें साथ ही इनमे न 'पान-फूल' की कोमल संवेदनाए

और लुभावनी भाषा है, न 'महुए का पेड़' की झुँझलाहट और आक्रोश से भरी तीखी सामाजिक दृष्टि। बेहद सहज शैली मे कही गयी इन कहानियों मे मैंने गाँव के जीवन का नया धरातल छूने का प्रयत्न किया है। सफलता मुझे मिली है या नहीं—यह आप जानें! हाँ, इस संग्रह की अंतिम कहानी 'प्रलय और मनुष्य' की कथा-भूमि कुछ दुरूह लगेगी, पर मेरा विश्वास है, उसे पूरा पढ़ जाने पर आपको प्रसन्नता होगी।

२ डी, मिंटो रोड —मार्कण्डेय

इलाहाबाद

फरवरी, १९५७



कल्यानमल

इधर-उधर, चारों ओर बेल और झरबेरी के झार-झंखाड़, बीच-बीच में शीशम-नीम और कहीं-कहीं इक्के-दुक्के आम के बड़े-बड़े पेड़ों से घिरे सोलह बीघे के इस तालाब को कल्यानमन कहते हैं। कुल एक-डेढ-गज़ पानी ही ठहरता होगा इसमे, और वह भी तब, जब साधारण हमवार खेत भी पानी में डूबे रहते है; वर्ना पानी आया और गया, फिर हर जगह एक-सा समतल, थिर और निर्मल जल। एक ओर भींट के पास नरई के हरे, शाख विहीन, नुकीले डंठलों की बारात और दूसरी ओर सिंघाडे के गहरे-हरे और बीच मे लाल धब्बों वाले सुहावने छत्ते। कोई दिलवाला आँखें डाल दे, तो शोभा की इस अनबूझी वंशी में फँसे बिना न रहे।

इसी कल्यानमन की पूरब दिशा मे एक ऐसा टीला हैं, जिस पर घास का एक तिनका भी नहीं उगता। मंगी की झोपड़ी इसी पर है। तीन ओर सरकंडे और सरपत का टट्टर, सामने का हिस्सा खुला हुआ। मंगी इसी जगह बोरसी मे आग और चिलम-हुक्की लिये, बैठी रहती है।

उसकी दृष्टि केवल दो जगह रहती है; कभी राख से भरी, सामने रखी बोरसी पर, तो कभी सिंघाड़े के छत्तों पर। लेकिन एक पनारू है कि उसे सुध-बुध ही नहीं। मेरे मरने पर क्या होगा! यह सब कौन देखेगा—यही एक बात उसके दिमाग़ को कभी-कभी कीड़े की तरह चालने लगती है।

—किसका बच रहा है। जगई खाली डराने-धमकाने से स्टीपा दे कर भाग गया और मुसई ने सौ रुपये ले कर माँ-बाप की धरती पर से पाँव उठा लिये। बस वही तो एक बच रही है, और उसके साथ भी क्या कम किया ठाकुर ने! कितनी बार पटवारी को धमकाया, कितनी बार उसे रुपये देने की लालच दी। एक बार तो यहाँ तक कहा, "तुम मंगी का नाम कल्यानमन वाले खेत से काट कर, अपना चढ़ा लो! मैं आधा तुम्हे ही दे दूँगा पर कुछ तो बचाओ!"

लेकिन पटवारी के मरे बाप की रूह तक मंगी के नाम पर काँप जाती है, पटवारी की क्या हस्ती! जाने कब, क्या कर बैठे! उसका कोई भरोसा है।

मंगी है एक ही अपने गाँव में, कान को बहिर-ठेंठ, किन्तु आवाज़ की इतनी कडी कि नया आदमी सहसा डर जाए। आँधी की तरह पैर के पंजों के सहारे लुढ़कती हुई भागती चलती है। घर में एक भड़साँय, दो घर मे पानी की भराई और वही कल्यानमन के सिंघाड़ों की खेती है, उसके पास। पनारू दो घरों में पानी क्या भरता है, अपनी ज़िन्दगी ही पट्टा कर दी है, उसने। उसे जैसे यही सब अच्छा लगता है। बाँस की लचीली काँवर में पानी के बड़े-बडे मटके लटकाये, पसीने से लथपथ, वह सारे दिन कुएँ से घर और घर से कुएँ के चक्कर लगाया करता है। कोई भर मुँह बोल दे, फिर पनारू उसका अपना बन जाता है। सयाना, हट्टा-कट्टा पर घरों की बूढ़ी औरते कहती है, "लैमर है, लैमर, भला कौन ऐसी करम की खोटी होगी जो इसकी गाँठ बँधेगी। जब इतनी उमिर तक मँगिया की मार सहता है तो वह बेचारी तो भर पेट खाना भी नहीं पाएगी।"

लेकिन जवान लड़कियाँ और गुलाबी रंग से भींगे नाखूनों वाली बहुएँ उसे बहुत चाहती हैं। जी भर उन्हें नहलाएगा, सबेरे आते समय दतुअन तोड़ता आएगा; और काम पड़ा तो कहीं दौड़ा हुआ चला जाएगा।

मंगी फूटी आँख से भी यह सब नहीं देखना चाहती। जब तक बड़े मालिक जीवित थे, मंगी काम करने बड़की बखरी आती थी, पर लोग कहते है, जब वे बिगड़ते, तो जितना मालिक बोलते, उसका दूना बोलती, मंगी। क्या मजाल जो जबान बंद हो। लोग दाँतों तले अँगुली दबा लेते,—कैसी मुँह जोर है, राम! भला जिसे देख कर लोग रस्ता बचा जाते हैं, उससे बात लड़ाती है।

मंगी को क्या डर! कहती, "कोई सेंत का खाती हूँ जो लात-गारी सहूँ। रात-दिन छाती पर बजर जैसा गगरा-बाल्टी ढोती हूँ। बन्न कर दूँ तो सरने लगें रानी लोग। का हमरी देहियाँ माटी की है! का हमके देखे वाले की अँखिया घुमची की हैं। हमहूँ हाथ-पाँव में मेंहदी रचाय के बैठ सकती हैं।"

मंगी तब तक बोलती रहती, जब तक ठाकुर उसके आगे से हट न जाते।

ठाकुर के मरते ही मंगी ने बखरी छोड़ दी थी। कहती, "का धरा है, अब उस मनहूस घर मे। अब न वह बात रही, न बात करने वाला। लबंडे-लपाड़ियों का कोई भरोसा। कभी कुछ कह ही दें, कोई बबजबान ही निकाल दें!"

मंगी सबेरे, रहट्टे का खरहरा ले कर निकलती, सारे बगीचे को पत्तियाँ बटोर डालती, उन्हें इकट्ठा कर के बड़े-बड़े गाँज बना देती और साल भर उसी से भाड़ के ईंधन का काम चलाती।

बरसात के चार महीने वह सिंघाड़ों के पीछे लगती। उस बियाबान, जंगली सिवान मे जब लोग पाँव रखते थरथराते तो वह कमर-कमर भर पानी में बिना किसी रोशनी, बिना किसी डर के चली जाती और कल्यानमय के भींटे पर उसकी चिलम वाली चिमटी की खरोंच से फुर-फुर उडने वाली चिनगारियो का मज़ाक, जैसे सारी अँधेर-गुप्त सृष्टि की छाती रूपी पत्थर पर बच्चों के छुर्री छोड़ने जैसा लगता रहता।

आज सबेरे से मंगी उदास है। उसे बार-बार यही लगता है कि वह कब तक जीएगी। कब तक इस पोखरी के पानी मे सती होगी। सिंघाड़े की पत्तियों मे कीडे भी तो लग रहे है। शरीर मे रक्त मास होता तो वह पनारू का मुँह देखती। कछाना मार कर आधे-आधे दिन घिन्नई पर बिता देना उसके लिए मामूली बात थी, लेकिन वह समय की बात थी। तब तो उसने अपने ब्याहते को भी कभी आदमी नहीं समझा। उसकी कभी परवाह नहीं की।

इस एक विचार से मंगी जाने किस लोक में चली गयी। उसकी नसें जैसे सिकुड़ कर टूट गयीं और अशक्त शरीर मे प्राण नाम का पंछी तड़फड़ाने लगा।

बड़े ठाकुर के मरने के बाद की बात है,—माघ की बदरी पैर तोड़ कर आसमान में बैठ गयी थी। घर की काठ की किवाड़े भी ठारी के बाण से काँप-काँप उठती थीं। पशु-पच्छी शीत में ऐसे जम गये थे कि उनका कोई अस्तित्व ही नहीं जान पड़ता था। चारो ओर सूना—घर-बाहर, पेड़-पालव सब एक से। कहीं तो जीवन की एक रेखा दीखती, और उसी में मगी के घर का ईंधन चुक गया। पत्तियाँ भींग गयी।

मंगी ने लग्गा सँभाला और बाग़ की ओर हो रही। आम के बंडे तोड़ते-तोड़ने साँझ हो गयी। किसी तरह उन्हे लाद-फाँद कर घर लायी, आग पर रखा और आँच बना कर पनारू की सेंक-साँक की। उसे फ़ुसला कर सुलाया पर भूख का मारा लड़का, कहाँ सोने वाला! नींद भी कहीं भूखे का साथ देती है। बड़की बखरी की चार लिट्टियों की आशा लिये वह इतनी देर बैठी रही पर बंगा का कहीं पता नहीं। अंत मे ऊब कर उसने बोरसी मे आग भरी और उसे चारपाई के नीचे रख कर, कथरी मे घुस गयी। जाने कब, शायद रात का दूसरा-तीसरा पहर रहा होगा, बंगा ने किवाड़ भुड़कायी।

मंगी ने उठ कर दरवाज़ा खोला तो वह पानी मे भींग कर सिकुडा, भींगे पिल्ले की तरह थर-थर काँप रहा था, पर उसकी अँगुलियाँ दरवाज़े के ऊपरी हिस्से मे फँसी हुई थीं "खो....दो....इसे!....इऽस्से.... देखो....मैंऽ....मैं कितना बड़ा हूँ....कैसी....कैसी छोटी है दुवार....मैं अन्नर कइसे आऊँ....कइसे....कइ...."

उसकी ज़बान टूटती जा रही थी। वह लड़खड़ा रहा था। मंगी का कलेजा जल कर रह गया। बच्चे की भूख, अपनी परेशानी और बगा की नशाखोरी, उसे लगा; जैसे कोई भूत ठहाका लगा कर बत्तीसों दाँत बाये खड़ा हो। जैसे किसी ने उसके पेट मे कस कर एँड़ी मार दी हो। उसने झटके से दरवाज़ा बंद कर दिया और भूखी सियारिन की तरह तिलमिला कर बच्चे की तरफ़ झपटी—क्यों न दबा दूँ इसका गरदन और इस नसेड़ी को लात मार कर, कल दूसरे घर बैठ जाऊँ। देखूँ यह दाढ़ीजार किस बूते पर सराब पीता है।

पर जाने क्यों, वह रुकी रही। कुछ भी करते नहीं बना, उससे। न होता कुछ तो उसे खपरैल के साये ही में कर लेती, पागल! लेकिन वह अशक्त हो गयी थी—चेतना विहीन, निष्प्राण।

सवेरे तक तो बंगा को चला जाना चाहिए था, इस दुनिया से परे, जहाँ केवल आत्मा का वास है। वहाँ शरीर की दुर्दशा की कोई गुंजाइश नहीं। इतनी पीड़ा के लिए कोई अवसर नहीं, पर वह जीता रहा, साँस के पतले तारों में बँधा हुआ, लेकिन ये तार अब तक बेसुरे हो चुके थे....घरऽर् र्....घोंऽ. ..घोंऽऽ....

वैद्य जी ने बतलाया—शीताग हो गया है।

मंगी ने सुना, देखा, दवा-दारू मे लगी, पर जाने क्यों तब तक वह सूख गयी थी। जैसे उसे तो मालूम ही था। उसी ने तो किया है, यह सब।

वैद्य जी की नाड़ी की धराई के सोलह आने के लिए उसे फिर बड़की बखरी की बहू का दरवाज़ा झाँकना पड़ा। वे चवन्नियाँ सूद पर रुपया चलाती थीं, पर मंगी को देख कर पुराना पँवारा ले बैठीं, "सब दिन एक समान नहीं होता मंगी। राजा हरिचन्न पर भी बिपत पड़ गयी थी। तब तो लगा, तू चौखट भी नहीं लाँघेगी। बड़े मालिक क्या गये, तेरी सेवा के लायक कोई रहा ही नहीं, मुँदा हमसे जस-अपजस से का सरोकार! राम राम कहो! यही दवा है। काहे रुपया पानी में फेंक रही हो।"

उन्होंने आँचल के खूँट से दो अठन्नियाँ छोड़ कर, छन्न से उसके आगे फेंक दीं। मगी पैसा उठा ही रही थी कि बड़की बहू कँहर कर बोलीं, "बीस आना हो जाएगा अगिले माघ में, चेत रखना!" तभी पनारू रोता-रोता आया। वह बता ही क्या पाता! और मंगी दौड़ती-भागती घर पहुँची तो पंडित-बो बंगा को खटिया से उतार कर, तुलसी और पानी उसके मुँह में डाल रही थीं।

—मंगी यही सब सोच रही थी, कि चारपाई के नीचे कुछ खुरखुराया

और कल्यानमन के सिंघाड़ों के बीच एक छपाक् की आवाज़ हुई, शायद कोई पहिना उछला था और जाने क्यों। मंगी का सारा रोंया बिनबिना कर खड़ा हो गया। उसने सामने दूर तक कल्यानमन की छाती पर फैले, अपने सिंघाड़ों के छत्तों पर निगाह डालनी चाही पर अँधेरे का भार इतना बढ गया था कि उसकी पुतलियाँ, बरौनियों के पार कुछ न देख सकीं। बस पानी की हल्की टिप्‌टिप् उसे सुनाई पडी, जो झींगुरों की झनकार और मेढकों के पाठ-दोष मे घुमड़ी और टूट कर खो गयी। तभी उसकी झिलँगा चारपाई के नीचे जोर की चें-चें की आवाज हुई। उसने जल्दी से धिन्नई में बाँधे जानेवाले एक बाँस के टोंटे को खींचना चाहा कि ज़ोर की फों-फो की फुफकार ने उसके प्राणों की शक्ति ही छीन ली। उसने जल्दी से आग मे कुछ सूखे खरपात डाल कर रोशनी की तो एक भयानक सर्प को क्रोध मे फन काढ़े झूमते देख कर, उसका हलक सूख गया। पल भर वह सोच भी नहीं पायी कि वह क्या करे! लेकिन जैसे ही आग बुझी, वह झोंपड़ी से बाहर निकल आयी और पानी में भींगती, देर तक खड़ी रही।

ऐसा नहीं कि साँप उसके लिए कोई नयी चीज़ है। पल मारते साँप के फन पर डंडा रख देना, उसके बाये हाथ का काम था, पर इस अँधेरे और मन की प्रबल निराशा ने उसे भयातुर बना दिया था। वह घर तो लौट ही सकती थी पर कहीं दूसरी ओर से पनारू न आ जाए! उसे क्या मालूम कि मड़ैया मे क्या है! कहीं उसी खाट पर जा बैठे, तो!

वह बड़ी देर तक पानी मे भींगती यही सोचती रही। कई बार उसके मन में आया, वह अभी चल कर ठाकुर के सामने इस्तीफ़े के कागज़ पर अँगूठे का टीप लगा दे, लेकिन तभी बादलों में चमक हो

जाती, सारे प्रातर का तिनका-तिनका उजागर हो जाता और कल्यान-मन के विस्तृत सीने पर मोटे कवच की तरह कसे हुए सिंघाडे के छत्ते, उसे धरती की माया मे जकड़कर बाँध लेते ।

दो साल हुए जब उसने सुना था कि जिसकी जोत होगी, भूँय उसी की हो जाएगी तब उसे लगा था; न तालाब धरती है, न सिंघाड़ा खेती। कहाँ हल चलाती हूँ, मैं ! कहाँ मेरी जोत है ! लेकिन इतना ही नहीं, उसे तो अभी इस बात पर भी शक था कि सुराजी लोगो का राज हो गया है। बगा सुराजिओं की सभा मे जाया करता था। कभी खुश रहता तो लौट कर मंगी से अपने सारे मंसूबे कहता, पर मंगी उसे डाट कर चुप कर देती, "ऐसे ही राज पाट छोड़ कर चला जाएगा तो राजा रामचन्नर और मलिच्छ लोग मे फरक क्या हुआ !" लेकिन बगा उसे बार-बार समझाता कि सब तो सब, यह कल्यानमन अपना हो जाएगा। चाहे पानी की भराई मे ही क्यों न मिला हो, पर सिंघाड़े को काश्त तो वही करता है। लेकिन मंगी इसे नहीं मानती थी और उस दिन तो उसको अपने पर ध्रुव विश्वास हो गया था, जब बंगा के मरते ही घर में एक ओर लाश पड़ी थी और दूसरी ओर प्यादा बेदखली का हुकुमनामा उसे दे गया था, फिर कितनी मुश्किल से उसने अपना नाम चढ़वाया था, कितनी परेशानियाँ सही थीं, क्योंकि उसका पनारू तब नाबालिग था।

मंगी इसी असमंजस में पड़ी रही। उधर पानी की बूँदें भी कड़ी हो गयीं, हवा भी धीरे-धीरे सुरसुराने लगी, उसे कुछ सिरहन भी मालूम होने लगी पर उसका मन साँप की माँद में हाथ डालने को न हुआ और वह लुढ़कती-पुढ़कती घर की ओर चल पड़ी।

पनारू घर भी नहीं मिला।—बखरी रोटी लेने तो नहीं चला गया, कहीं कल्यानमन न चला जाए !

इसी बीच वह झपट कर बड़की बखरी पहुँच गयी। पनारू दहलीज मे एक बड़े तखत पर गहरी नींद मे सोया था। मंगी ने उसे झकझोर कर जगाना चाहा पर ठाकुर के नौकर ने उसे डाँटा, "क्यों बेचारे को जगाती हो। जाकर कल्यानमन पर ठंडी हवा खाओ! मरने-खपने को तो अच्छा है, गरीब। जैसे यहाँ नोकर, तैसे अपने घर मे नोकर। उसका है क्या तुम्हारे घर मे!"

मंगी की खोपड़ी ठनकी।—कहीं ठाकुर हमारे ही घर मे आग तो नहीं डाल रहे हैं! सब तरह से हार कर यह एक अच्छा उपाय हो सकता है, उनके लिए। उसने झकझोर कर पनारू को जगा दिया। मगी को देखते ही पनारू एक बार तो खिसिआया फिर जैसे जल-भुन गया।

"यहाँ भी खाने पहुँच गयी। मैं सब तेरी चाल समझता हूँ। मेरे परान न खा, जा कर मर उसी कल्यानमन को छाती पर रख कर! जब बाबू की तुम नहीं....।"

पनारू का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि मंगी के झापड़ों से उसकी कनपटियाँ झनझना उठीं। "यही सीखने बैठा रहता है यहाँ, जानता नहीं कि ये लोग जमीन के लिए, आदमी की गरदन भी काट सकते हैं। पहले यही घर थे कि काम करने पर खेत मिलते थे, आम के पेड़ मिलते थे, शादी-ब्याह पर लकड़ी-फाटा, गहना-कपडा मिलता था, हरजी-गरजी अनाज-पानी मिलता था। मालिक लोग तनी-तनी बात पर मुँह जोहते थे। अब तो हर की जोताई एक खेत मिलेगा। बेचारा मजूर उसे खाद-पानी दे कर जोतने लायक बनाये कि दूसरी साल उसे कोई दूसरा ऊसर-पापर बता कर, बना-बनाया खेत हथिया लिया जाएगा। कहीं उसका नाम न चढ़ जाए खेत पर! अँखिया त

फूट गयी हैं सुरजियन की कि यह अन्हेर भी नहीं देखते। खेती चमरू करेगा, परताल ठाकुर के नाम से होगी। बीच में पटवारी इधर से भी खाएगा, उधर से भी खाएगा। अब तो बेभूँय का किसान, खाद हो गया है, खाद। बस वह खेत बनाता है।

"बड़ा कनून सीख के बैठा तो है, भला बची है एक बिस्सा भूँय किसी मजूर-धतूर के पास ? सभी तो खेत जोत रहे थे। कोई मार खा कर इस्टीपा लिख गया, तो किसी को बहका कर सादे कागद पर अँगूठे की टीप ले ली, इन लोगों ने। किसी को सौ-दो-सौ दे कर टरकाया। कहीं रह गया है, कुछ ? वह तो कहो।मुझे, जो बैठी हूँ बज्जर की तरह छाती पर...."

"तो मुझसे क्या मतलब . .?" पनारू जैसे कुछ कहते कहते रुक गया।

"तुम से सरोकार ही नहीं. .मंगी दाँत पीसती हुई तखत पर चढ़ गयी और पनारू का कान पकड़ कर झकझोरना ही चाहती थी कि ठाकुर का बड़ा लड़का खड़ाऊँ चटकाता बखरी से निकला।

"क्या शोरगुल मचा रखा है !" उसने दूर ही से डाँटा, "बेचारा लड़का सयाना हो गया और अब तक जगह-जमीन पर हर जगह अपना नाम चढ़वा रखा है। उसका न घर से मतलब, न दुआर से। क्या वह तुम्हारा नौकर है ! वह तुम्हारी सारी होशियारी समझता है।"

"ठाकुर हमारा घर नास कर रहे हो।" मंगी दुख की कराह से आज पहली बार जैसे टूट कर बोली, पर पनारू अब क्यों चुप रहता ! सहारा पाकर, काँपते हुए कहने लगा, "बहनोई जो तीसरे दिन दुआर खनते रहते हैं। क्या हमें पता नहीं कि क्यों इतना चक्कर काट रहे

हैं। उन्हीं को लिखना चाहती हो तो जा कर लिख दो! मेरे पास भगवान का दिया इस बखरी मे मब कुछ है।"

मगी की समझ मे सब कुछ आ गया। घृणा से तिलमिला कर, वह पनारू के बालों मे बर्रे की तरह चिपट गयी, न जाने कितनी देर तक लात-घूसे चलाती रही और जब थक कर पसीने से लथपथ हो गयी, तो जाने कब की बँधी आँसुओं की धारा उसकी आँखो से बह निकली—रिस-रिस कर, हिचक-हिचक कर, वह रोती रही और ठाकुर को कोसती रही, फिर सहसा उठी और बडे लड़के से कहने लगी, "जब मैं अपने सराबी आदमी की नहीं हुई और उसे ठारी मे गला कर मार डाला तो इस भोंदे लड़के को कल्यानमय नहीं दे जाऊँगी। मँगाओ अपना कागद-पत्तर, ले लो, मेरे अँगूठे का टीप!"

फिर जैसे किसी गहरी पीड़ा के डूबी हुई कहने लगी, "मैं जानती थी कि यह सँभाल नहीं पाएगा। इसे तुम लोग फँसा लोगे....और हुआ भी तो वही।"

वह पागल-सी बकने लगी, "जल्दी करो, मँगाओ कागद! नहीं तो मैं जाती हूँ। मेरी झोपड़ी मे मेहमान बैठे हैं। उन्हें अकेला छोड़ कर आयी हूँ।'

काग़ज़ पर अँगूठे का टीप देने वह बढ़ी ही थी कि पनारू का सारा शरीर काँप कर रह गया। उसके जी मे आया, बढ़ कर माँ का हाथ थाम ले, पर उसे याद आ गया,—झोंपड़ी में मेहमान बैठे हैं, उन्हें अकेला छोड़ कर आयी हूँ।—और वह हँस कर रह गया।

"कल्यानमन लेना है न, क्यों न बैठे होंगे !" वह बुदबुदाया पर मंगी जैसे आँधी की तरह कल्यानमन की ओर भागी।

कौन जाने मेहमान अब भी फन काढ़े बैठे हों, कल्यानमन जो लेना है, उन्हें।



सोहगइला

उसके दोनों निरीह, खुले हुए, नन्हे-नन्हें हाथो को पकड कर, उनमे सोहगइला दबाते दबाते, माँ की बरसाती नदी-सी आँखे किनारो को लाँघ कर बह चली थीं, "इन्हे छोड़ना नहीं। कुल-परिवार की लाज का धियान रखना !" और माँ ने लाल जमीन पर छोटे-छोटे, पीले धब्बे वाली मोटी अँचरी-मनौरीदार सुहा के आँचल मे टँके घुँघुरुओं वाले किनारे को थोडा नीचे खींच दिया। घूँघट से दुलहिन का मुँह ढँक गया। देह पहले से ही ढँकी थी। दिखाई पड रहे थे केवल वे दो नन्हे-नन्हें हाथ, जिनमे लाल रंग का सोहगइला, गुलाब के लाल फूल की तरह लहक रहा था।

थोड़ी देर तक माँ को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा था—केवल एक धुध-सी धुएँ की सृष्टि और रामजस-बो के फूटे नगाडे का किड़िक-किड़िक्-गुड्म्....किडिक्-किड़िक्-गुड्म्....

लेकिन खटोली को उठती जान, उसकी अथाह जल मे डूबी-दृष्टि, अकुला कर बाहर आ गयी थी और एक बार फिर उसने बेटी के दोनों हाथों को कस कर दबाते हुए कहा था, "सास-ससुर का कहना मानना ! जहाँ बैठाएँ, वहीं बैठना, जहाँ उठाएँ, वहीं...." और वह फूट-फूट कर रोने लगी थी, 'चीज-बरन का धियान रखना रनियाँ, कहीं गिरा न देना।"

रनियाँ की खटोली चल पडी थी।

बैशाख की सुबह थी वह और हवा के पैर धूल के कड़े रंग के नशे मे लड़खड़ाने लगे थे। कहार रास्ते की भुल-भुल रेत को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उनके पैरो मे बिजली बँध गयी थी, पर रनियाँ जैसे अवसन्न थी, वह अभी रो तो इसलिए पडी थी कि उसकी माँ रो रही थी, गाँव की सारी औरतें आँसू बहा रही थी, उसकी सखी नगीना उसके गले से लग कर फूट-फूट कर बिलख रही थी, वरना उसे रुलाई आती ही क्यों! इस भीड़-भाड़ मे मौका ही कब मिला था उसे अपनी लाल चुनरी और झब्बा-तिलरी, बाजू-बरेखी देखने का। उसने खटोली मे अपने को अकेला पा कर, एक बार इधर उधर देखा, फिर एक आँख से सोहगइला सीने से दबा कर, सुहा के घुँघुरूदार आँचल को हटाया, तो उसका मन एकाएक दौड़कर नगीना के पास पहुँच गया।

—उसने अपनी गुड्डई को कैसी पियरी पहनायी थी गले में कैसी चमकदार गुरिया बाँध रखी थी और जब उसने माई से कहा तो माई कितना झिड़क रही थी... "चल-चल तो बड़ी आयी शान बघारने। उसका बाप कमासुत है! हर महिन्ना पचास मनीअडर आ जाता है। तेरा बाप तो ऐसा विधरमी है कि जब तक रहा, दारू-सराब पी कर रोज गालियाँ देता रहता और कमाई-धमाई तो दूर रही, गहना-गीठो भी बेच लिया, मेरे तन का। भगवान देह मे जाँगर न देते तो कब की मर बिलाय गयी होती। दो बरिस हो गया परदेश गये, भेजा है एक छदाम कि पियरी पहनाएगी गुड़िया को....?"

लेकिन आज वह बार-बार अपनी सुहा को देखती, बाजू पर आँखें गड़ाती, पैर की बिछिया को निहारती, फिर उसके मन मे उस सब को छूने की इच्छा होती। एक पाँत में सजा, उनकी दूकान लगा कर

देखने को मन करता, पर सहसा सोहगइला से सटा हुआ हाथ, माँ की बात याद करा देता,—इसे छोड़ना नहीं और वह दूसरे हाथ से उसे सीने से दबा कर, पहले वाले को आराम देने लगती। इसी बीच, कभी खटोली ढ़ोने वाले कहार बोल उठते और और उसका ध्यान टूट जाता, दूसरा हाथ भी सोहगइला से जा चिपकता ...

कहीं यह छूट न जाए, उसके हाथ से। वह डरकर अपनी सुहा के आँचल को खींच, अपना मुँह ढँक लेती।

उसे याद आतीं ठकुरानी बहू।—माई उन्हीं के यहाँ ले जा कर उसे एक कोने मे डाल दिया करती थी और सारे दिन यहाँ से वहाँ चलती रहती। कभी बरतन माँजती, कभी कपड़े छाँटती, कभी कमरे साफ करती और बीच-बीच मे कोई खाने की चीज उसे थमा जाती।

—एक दिन ठकुरानी बहू की बूढ़ी माँ कितनी नाराज हो गयी थीं, मेरी माँ पर—"अरे रनियाँ की माँ। यह तेरी लाड़ली तो बात ही नहीं सुनती, किसी की। मैंने कहा, रनियाँ, जरा मेरा तलुआ तो सहला दे, बड़ी जलन हो रही है, तो आँख मटका कर चली गयी। यही सब सिखाती है क्या, इसे?" ठकुरानी बहू ने ढेर-सी सुपाड़ी के टुकडे मुँह में भरते हुए कहा था और माई के हाथ की अँगुलियाँ गरम चिमटे की तरह मेरे कानो से सट गयी थी। "सब की बात टालती रहती है। एक तो वैसे ही बिपत की मारी ठहरी, दूसरे ऊपर से तू करेजा खाती रहती है।"

उस दिन से वह ठकुरानी बहू की सेवा मे डाल दी गयी थी। काम क्या था उनके पास, बस कभी तौलिया उठा कर दे देती, तो कभी पानदान इधर से उधर कर देती, कभी छोटे-मोटे कपडे छाँट देती और कभी-कभार किसी को बाहर से बुला लाती। लेकिन जैसे-

जैसे वह बडी होती गयी, ठकुरानी बहू की बेटी हीरा को कभी पखा हॉक देना, कभी बाहर घुमा ले आना; उसके काम मे शामिल होता गया था।

—वे बोलती कम थीं तो क्या उसे चाहती भी नही थी, मॉ तो कहती थी, "खूब सेवा किये जाओ बिटिया, तुम्हे रानी की तरह विदा करेंगी। बडी नेक हैं हमारी बहू रानी।" लेकिन उस दिन उन्हे क्या हो गया था! थोडी-सी ही तो गलती हुई थी मुझसे, बस फराक ही तो हाथ से गिर कर पानी मे भीग गया था, हीरा का। इतने जोर का झापड़!—रनियाँ की कनपटी आज भी झनझना उठी थी।—यह सोहगइला हाथ से छूट जाएगा तो मॉ भी इसी तरह....और उसने उसे सीने से दबा लिया था। उसे लगा कि माँ यही कहीं खडी सब कुछ देख रही है, पर फिर उस नन्हीं-सी खटोली की दुनिया मे अपना एक छत्र राज देख, उसका मन प्रसन्न हो गया था। सिर्फ कहारो की बोली रह-रह कर सुनाई पडती थी और अब हवा के गर्म झोंको के दबाव से, उसके ओहार के दोनो ओर के पल्ले आपस मे मिलने-मिलने को हो रहे थे। उसकी दुनिया हवा के थपेड़ो से छोटी होती जा रही थी।

कहार थक गये थे। एक पेड़ के नीचे खटोली रख कर छॅहाने लगे थे। तभी जाने कौन-कौन....! वह उनमे से किसी को तो नहीं जानती। और मॉ ने कहा भी था, "सबके सामने लजाना, मुँह न खोलना, नहीं तो बड़ी नाम हँसाई होगी।"—मुदा इस पियास को वह क्या करे, कैसे रोक ले, इसे....! वह सोच ही रही थी कि कोई बूढ़ा खाँस-खखार कर सवारी का ओहार हटाते हुए, लोटे मे पानी और गुड़ के कुछ टुकड़े उसके आगे रख कर बोला, जैसे बाहर के लोगो को

भी वह अपनी बात सुना देना चाहता हो, "अबही बहुत लड़िका है। बेचारी को सुधि-बुधि कहाँ!' फिर उसे सम्बोधित कर कहने लगा, "बचवा पी ले पानी !.एक रोड़ा गुड भी मुँह मे डाल ले, नहीं तो छूछे पेट करेज मे लग जाएगा।"

कोई दूसरा बूढ़ा अपनी बीड़ी पर ज़ोर का कस खींचता हुआ, कह रहा था, "लड़की का जनम ही बिरथा है भाय! ई ससुरी जाने कहाँ जनम लेती हैं, जाने कहाँ पहुँच जाती हैं। हमार तो सोच कर करेज फट जाता है। बिटिया की बिदा एक तरह की मउत ही जानो भयवा!"

रनियाँ पानी थामते-थामते परेशान हो गयी। कैसे सम्भाले इतना बड़ा लोटा और यह सोहगइला! उसने एक बार अपना हाथ बढाया, पर फिर जैसे वह अपने से ही पीछे आ गया।

बूढ़ा वहीं बैठा था। कहार अपनी गाँजे की चिलम धधकाने लगे थे। कुछ लोग लोटा-डोर ले कर कुएँ की जगत पर जा बैठे थे। जब बहुत देर हो गयी और लोटा ओहार से बाहर नहीं आया, तो बूढ़े ने ओहार उठा कर देखा, लोटा वैसा ही भरा पड़ा था और गुड़ के टुकडे इधर-उधर फैल गये थे।

बूढ़ा समझाता रहा। कहता रहा, "चार-छे दिन में वापस कर देंगे, तू तो अभी बच्ची है, अपना घर कोई पराया है। वहाँ भी तुम्हें माँ-बाप मिल जाएँगे। मेरे कोई दस छेटो-पेटो तो हैं नहीं। कुल एक जोखन ही तो है, तुम्हें तो रानी बन कर रहना है, मेरे घर मे।"

रनियाँ को जैसे कुछ भी समझ मे नहीं आ रहा था। हाँ, यह बात वह सुन चुकी थी कि उसका ससुर बड़ा नेक है, बहुत चाहेगा उसे। इसलिए मन में बार-बार यही होता था कि यह वही बूढ़ा तो नहीं है? और माँ की बात उसे बार बार याद आती,—हरदम

खाने-पीने का नाम न लेना, नहीं तो लोग कहेंगे, कभी खाने-पीने का सुख भी देखा है !—पर उसका हलक सूखता जा रहा था। बार-बार जबान को तालू से सटा कर वह गले की चिकनाहट का अंदाज लेती और सामने रखे, बडे पीतल के लोटे मे भरे पानी को देखती, तो उसे वे सारी बातें भूल जातीं। लेकिन यह क्या, क्षण भर को उसने दृष्टि हटाई ही थी कि लोटे का भरा-भराया पानी उसकी आँखो से ओझल हो गया। केवल गुड़ के टुकडे बिखरे पडे रह गये।

खटोली फिर अपने रास्ते पर चल पड़ी। कहारो के पैर से लग कर उड़ने वाली धूल के कण, ओहार के सामने के खुले हिस्से से अंदर आने लगे और गर्म हवा के झोंके जैसे किसी विषधर की फुफकार की तरह उसे डरावने लगने लगे। उसका प्रसन्न मन भारी हो गया। बस एक बात उसे बार-बार याद आने लगी,—जोखन अकेला ही तो है, तू तो रानी बन कर रहेगी, रानी....

और ठकुरानी बहू का सुंदर चेहरा उसकी आँखों मे गड़ गया। बड़ी-बड़ी, काजल से भरी आँखें और सेंधुर से भरी माँग ! मेरी माँग भी तो भरी है, मेरी भी आँखों मे तो काजल लगा है। लोग कितनी बड़ाई करते है, ठकुरानी बहू की, मुँह तो किसी ने देखा ही नहीं, आज तक, बस अपने कमरे-से-कमरे, न कहीं आना, न जाना। खाना-पीना, सब वहीं पहुँच जाए तो ठीक है, नहीं तो नहीं। एक गिलास पानी की भी जरूरत पड़ी तो ...वह तड़प उठी, मितली छूटने लगी। लगा अब वह बेहोश हो जाएगी....बेहोश हो जाएगी। लेकिन वह भी वैसी ही बहू बनेगी, उसी तरह का घर दुआर होगा, वह भी कहीं नहीं जाएगी। चुपचाप अपने कमरे में बैठी रहेगी और अगर प्यास लगी तो... ! प्यास....प्यास....उसकी चेतना डूबने लगी। जाने कैसे वह खटोली की

रस्सी से उठँग गयी और हीरा बेबी की गुड़िया की शादी की एक-एक बातें, स्वप्न की तरह उसकी आँखों पर छा गयीं।

—कैसी धूमधाम थी! कैसे अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े आये थे गुड़िया के लिए और सोहगइला..! उसका ध्यान एकदम अपने हाथों पर चला गया। क्षण भर के लिए प्यास का सारा ताप जैसे वह भूल गयी हो,—वह ब्याहता है, वह ससुराल जा रही है, यह-उसका सुहाग है, सुहाग और प्यास की तकलीफ़ से ढीले होने वाले उसके हाथ एकाएक कस गये, क्योंकि ठकुरानी बहू की एक-एक बात उसे याद आ रही थी। उन्होने गुडिया को साज कर यही सब तो कहा था, जो आज माँ कह रही थी और यह बाजू-बरेखी, झब्बा-तिलरी, हाथ का कगन, सुहा, सिर का घूँघट; यही सब तो गुडिया का सजाव था.... यही सब।

उसने इधर-—उधर देखा।—पर यह तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। हाय राम, यह क्या हो गया?—उसका सिर बेहद चक्कर खाने लगा था, उसकी चेतना डूबने लगी थी पर हाथ सीने से लगे, दबे थे और साहगइला जैसे पानी की अंतिम बूँद की तरह उसके कलेजे को सींच रहा था।

क्षण भर बाद, उसने फिर आँखे खोली और चाहा कि चिल्ला कर कुछ कहे खटोली को रोके, पर खटोली तो कब की बरगद की छाँह मे रुक गयी थी और पानी से भरे, उसी पीतल के बड़े लोटे को दोनों हाथों से उठा कर मुँह मे लगाये, वह यह भूल ही गयी थी कि सोहगइला कब से उसके हाथ मे नहीं है और व्यग्य की एक तीखी हँसी उसके चेहरे पर बिखर गयी थी,—मेरा बाप भी तो अपने बाप का अकेला ही बेटा था, और माँ भी मेरे घर रानी ही बन कर आयी

थी ! फिर माँ के कालिख मे डूबे, रूखडे हाथो की असंख्य कालो रेखाओं के जाल मे फँसी, उसकी आँखे, दूर बैठी छोटी बहू और सामने लुढ़के सोहगइला; दोनो को देखने मे असमर्थ होती जा रही थीं क्योकि वह अब बच्ची नहीं रह गयी थी और सामने खड़े भविष्य को पहचान रही थी।



दौने की पत्तियाँ

हवा में कुछ गर्मी थी। आसमान का रंग कहीं भी धूमिल नहीं हुआ था।

सामने फैले विस्तृत भूखंड का हल्का नीलावरण, भोला की दृष्टि मे एकाग्र हो कर, चुपचाप बैठ गया था—बहुत ही गुम-सुम, जैसे प्रकृति का जीवन ही भूल से कही खो गया हो। सामने वाली नीम की पत्तियाँ भी किसी अनुशासन मे स्थिर खड़ी थीं। भोला ने ऊपर से नीचे तक उस नीम के पेड़ को निहारा।—पाँच ही बरस हुए इसे लगाये, लेकिन कैसा छितनार हो चला है ! गाँव मे किसके पास इतना सुन्दर नीम का पेड है ! डालियाँ जैसे धरती को चूमने बढ़ी आ रही है और जड़ के पास का यह चबूतरा ! उसका मन चहक उठा। लोगो की कही बाते याद आने लगीं।

—भई भोला का क्या कहना ! इनका हर काम ही निराला होता है। देखो न, चबूतरा क्या है, जैसे सिलमिट से पलस्तर किया हो। भोला जहाँ न हाथ लगा दे।

—एक बिगहा भूँय मे इतनी पैदा कहाँ ? धरती तो सोना उगलती है, सोना, इसके लिए। कैसी साफ-सुथरी झोंपड़ी बना रखी है। इस बीरान, भुतही जगह को गाँव की दुलहिन बना देना कोई मामूली बात है !

एक बीघे पतले, लम्बे, नहरी खेत के एक सिरे पर भोला की

यह सृष्टि गाँव की दुलहिन के नाम से पुकारी जाती है। यही भोला का राज है। एक ओर साग-भाजी का कोइरार और दूसरी ओर एक झोंपडी। उसके आगे एक छोटा-सा आँगन। आँगन के चारो ओर एक चौड़ी मेड़, जिसकी नाली मे मर्सा, मकोय, तुलसी और दौना से लेकर, बैजंती, रातरानी, और गुलदावदी के पौधे लहलहाते रहते है। दौना भोला को बहुत प्रिय है। प्रायः अपने घर आये जाने-माने लोगों का स्वागत करते समय, वह दौने की पत्तियाँ भेट करना नहीं भूलता। लेकिन भोला को आज हो क्या गया है? क्यों उसकी आत्मा इतनी रिक्त हो गयी है? उसने कोई पाप नहीं किया, किसी का नुकसान नहीं किया, किसी का पेट नहीं काटा। वह मेहनत करके खाता है, पसीना जला कर मिट्टी से अन्न जुटाता है। फिर उसके लिए दुख कैसा?

—मेरा बच्चा स्कूल से जल्दी क्यो नहीं लौट आता? गुलाबी कब तक साग बेचती रहेगी? क्या उसे मालूम नहीं... क्या उसे—भोला सोचते-सोचते झुँझला उठा,—उन्हें पता नहीं ही होना चाहिए वरना इस तिनके की झोपड़ी मे आग लग जायगी। फिर कौन बुझाएगा, इसे? कोई सयाना बेटा भी तो नहीं, जो फिर से जोड़-तोड़ कर घर-गृहस्थी सँभाल ले। भोला ने माँथे का पसीना अँगुलियों से काछ कर, नीचे झिटक दिया। बगल मे देखा तो मर्से की लम्बी-लम्बी, लाल बालियों पर गौरइयों का एक झुण्ड उतर आया था। पके दानों को फोरते हुए, उनके ठोरों से कुट-कुट की ध्वनि निकल रही थी। दूसरा दिन होता तो भोला उन्हे उड़ाता खेत के पास फटकने भी न देता। पर आज जैसे उसका मन इस आवाज़ के पीछे दौड़ चला। वह सुनता रहा, क्योंकि जब भाँटे और मिर्चे की तैयार फसल का एक पौदा भी

अब उसका नही रहेगा, तब इन मर्सों से क्या होता है। उसके जी मे आया कि वह चिल्ला पड़े, "खूब खाओ, मनमाना खाओ!" पर एकाएक गुलाबी को सामने आती देख, वह हड़बड़ा उठा।—ऐसा क्या करे कि वह सोचने लगा और वही बगल मे पडी खुर्पी उठा कर, मर्से की जड़ के पास जा बैठा।

"भगवान तोहे बइठे के नाहीं लिखे हैं का हो, जो पके मर्से की जड खुरपियाय रहे हो? कुछ रस-दाना भी किया या वैसे ही हो?" और वह तेजी से झोपड़ी के द्वार पर चली गयी। लेकिन भोला मन मारे उसी मर्से की जड मे गडा रहा।

पॉच बरस पहले की वह अँधेरी, बरसती रात उसके अँधेरे मन मे कलट कर थम गयी। हवा के गहरे थपेडों और पानी की बूँदो के तीर से उनके चेहरे बिंध रहे थे। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। धरती पानी मे गलती जा रही थी।

—काहे गाँव छोड़ रहे हो? ...कहाँ जाओगे इतनी रात?....बनी-, बनायी गिरहथी है भुल्लू के बाबू, सोच समझ लो .! जहाँ चार जन रहेगे, कुछ-न-कुछ.. ., फिर हम नीच जात के है. .चाकरी करने वाले का मान-जान कब हुआ है! इतनी छोटी-सी बात के लिए गाँव छोड़ रहे हो।

—गुलाबो, अब तो वहीं रहेगे, जहॉ चाहे सूखी रोटी ही मिले पर किसी की गालियाँ न सहनी पड़े। भुल्लू को बचाये रहो!

उसी समय बिजली कड़क कर अँधेरे मे धँस गयी थी और वे दोनो बच्चे को बीच मे करके, एक दूसरे से सट गये थे। पानी की बूँदों ने उन्हें ढँक लिया था। कैसी अनोखी छत थी वह—पानी की छत।

भोला सोचते-सोचते सहसा रुक गया। गुलाबी कुरुई में बजड़ी का लावा और लोटे मे रस लिये खड़ी थी।

"खर तो मार लेते। कहाँ की बिपत आ गयी थी जो बासी मुँह बैठे रह गये?"

भोला कुछ कहने ही जा रहा था कि गुलाबी जैसे विस्मय में बोल उठी, "अरे वह न देखो, सुथना-पुथना पहिरे कई लोग चले आ रहे हैं।"

भोला काँप कर रह गया।

"कहाँ?"

"वहाँ देखो!"

भोला के शरीर मे बिजली दौड गयी। वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम जा कर घर मे बइठो.. इंजीनियड़ साहब हैं।"

"तो का खाय जाएँगे? .. बड़े चले पर्दा कराने।"

भोला को जाने क्यो क्रोध आ गया! उसका शरीर काँपने लगा। उसे लगा कि वह आपे से बाहर हो जाएगा, पर वह इतना गर्म तो कभी नहीं होता था। उसने विस्फारित नेत्रो से गुलाबी को देखा। वह डर कर सिमट गयी। कैसी थी वह शकल! उसने कभी इस चेहरे को नहीं देखा था। बढ़ी हुई दाढ़ी के नीचे झाँकनेवाली नहर-सी लकीरें, आँखें धँसी-धँसी। सारा शरीर जैसे गन्ने के चुसे चेफे-सा सिकुड कर ऐंठ गया था।

भयानक-से-भयानक विपत्ति को हँस कर सहते हुए, मुस्करानेवाले भोला को यह क्या हो गया?

वह सोचने लगी,—इन खुरदरे हाथों मे तो सोना बसता था।

इनकी टूटी-फूटी थकी बोली से अमृत टपकता था। यह हा क्या गया, आज....भगवान यह क्या हो गया ! वह जैसे किसी डाल से टूटे पत्ते की तरह बेसहारा हो गयी।

"तो मर यहीं खडी-खड़ी। लाज-हया तो सब धो कर पी गयी। यह घर-घर घूम कर तरकारियाँ बेचने का फल है।"

"यह सब क्या कह रहे हो, भुल्लू के बाबू !" और वह फूट-फूट कर रोने लगी।

पर भोला वहाँ रुका नहीं। वह जल्दी-जल्दी डग बढाता आगे बढ़ गया और सिंचाई विभाग के इन्जीनियर साहब, छोटे साहब तथा ठाकुर साहब से बडी देर तक बातें करता रहा।

इधर प्रथम पंचवर्षीय योजना का समय समाप्त हो रहा है। दो लाख रुपये का काम बाकी रह गया है। काम नही हुआ तो रुपये डूब जाएँगे। योजना तो जनता के हित के लिए बनायी गयी है न ! इसलिए किसी भी तरह काम हो जाना चाहिए और मौका भी क्या सुनहरा मिला है कि चैती की जवान फसल, धरती पर पेंगे मारने लगी है। अभी-अभी किसानों ने खेतो को दूसरा पानी दिया है। इस समय खेतों के बीच से नहर बनवाते समय, करीब साठ फुट चौड़ी जमीन पर फावड़े चला कर, नरम मिट्टी उलटवाने मे, ठेकेदार को भी काफ़ी आराम है। जेठ-बैशाख होता, तो मिट्टी पत्थर होती। सिंची-सिंचाई लहलहाती हुई मिट्टी मे फावड़े ऐसे धँसते हैं, जैसे सेब में दाँत। ऊपर

से सहयोग और राष्ट्रीय हित का भाषण। घूँ-घूँ करके गुर्रानेवाली जीपों की चहलकदमी के लिए ऐसी मुलायम सेजें कहाँ मिलेगी ?

महीने भर से गाँव की सीमा मे से नहर बन रही थी, पर जब तिवारी जी के बारह बिगहवा चक के ठीक कोने पर फीता गिर गया, तब सारा काम जहाँ-का-तहाँ धरा रह गया। सिंचाई मिनिस्टर इसी खित्ते के तो रहनेवाले है। पिछली बार चुनाव मे तिवारी जी ने धन-जन से बड़ी मदद की थी, उनकी। कितने असामी तो गाय-बैल की तरह बाड़े मे रात भर बंद किये रहे और सवेरे ही लारी मे भर-भर कर उन्हे पोलिंग स्टेशन पहुँचा कर वोट ले लिया गया था। लोग कहते है, तिवारी जी ने कमाल कर दिया था। सिंचाई-मिनिस्टर तो इतने खुश कि तिवारी जी की अकल के ग़ुलाम हो गये, तब से।

और अब जब नहर का सिरा आ कर उन्हीं तिवारी के बारह बिगहवा के कोने पर गिरा, तब उनके तेवर चढ़ गये। काम बद हो गया। पंडित जी रात की गाड़ी से फौरन लखनऊ के लिए रवाना हो गये। सबेरे ही; लोग कहते हैं, गाँव से, तार द्वारा इन्जीनियर को लखनऊ बुलाया गया और आदेश हुआ कि नहर इधर-उधर घुमा कर खेत बचा लिया जाए।

इन्जीनियर बड़ा हँसता था, क्योकि इस नन्हे-से काम के लिए इतना बड़ा पँवारा खड़ा करने की क्या ज़रूरत थी ? यही हजार रुपये और एक मुर्रा भैंस, जो अब दी है, तभी दे देते तो बिना लखनऊ गये ही काम हो जाता। उनका तो यही काम है। जिस पार्टी ने रुपये ज़्यादा दिये, उसकी ओर से फीते का रुख ज़रा-सा मोड़ लिया। फिर

नये शिकार, ताजे रुपये और इस तरह गाँव-के-गाँव चंदा करके अपनी हद इस खूबसूरती से बचा लेते हैं कि नहर का पानी भी मिले और जगह भी खराब न हो। अब क्या कोई परायी सरकार है? यह तो रुपये के एक घर से दूसरे घर मे जाने की बात हुई। जनता की सरकार, जनता को कैसे नाराज़ करे? उसको काम तो करना ही है, और श्रद्धा-भक्ति से जो भी मिल गया, उसे नकारें कैसे?

इधर गुलाबी के बडे-बडे मंसूबे हैं। उसने सुना है, नहर निकलने पर कोई अड्डा बनने को है। पानी भी पास रहेगा। खूब तरकारियाँ होंगी और वह उसी अड्डे पर तरकारियों की एक दूकान लगा देगी। —कौन मारा-मारा फिरे! तब तक तो अपना भुल्लू भी सायना हो जाएगा, पर आज एकाएक भोला की यह हालत देख कर उसका उत्साह ठढा हो गया। अभी तो गाली-गुफ़्ता ही है। कौन जाने, कभी हाथ भी उठाने लगें। उसने आँचल से आँसू पोंछे और रस-दाना उठा कर घर मे लौट गयी। कब भुल्लू स्कूल से लौटा और कब जेब मे बजड़ी का लावा भर कर गुल्ली-डंडा खेलने चला गया; उसे पता नहीं। हाँ, उसने रात बजड़ी की लिट्टी और बथुए का साग भूल्लू को दिया, उसे इतना मालूम है।

सुबह जब उसके दरवाजे पर शोर-गुल हुआ तब एकाएक हड़बड़ा कर वह उठ बैठी। वह रात लौटे ही नहीं और मैं ऐसी बावरी कि सो गयी बिना पता लिये। उसका मन थिर हो गया था। लेकिन जब शोर बढ़ता गया, तब वह बाहर निकल आयी। बहुत से आदमी

देख कर वह चौंकी। क्या बात है? घूम कर देखा, उसका खेत साफ हो चुका है। नहर आधे खेत तक पहुँच गयी है—पतले-लम्बे खेत के ठीक बीचों-बीच। मज़दूर कह रहे हैं, "यह तो ठीक नहर की ही नाप का खेत है।"

पचीसो फावडे साथ ही उठ रहे हैं, साथ ही गिर रहे है। किसे पकड़ ले, किसे रोक ले, वह। पागल की तरह खेत मे दौड़ने लगती है।

वहीं बगल मे कैम्प के पास बहुत-से लोग किसी को घेरे खडे है। पुलिस के आदमी पगड़ियाँ बाँधे घूम रहे हैं। गुलाबी दौड़ी जाती है तो देख कर धक् से रह जाती है।

"भूल्लू के बापू, तुम! क्या हो गया, तुम्हें!" वह दौड़ कर भोला के पास पहुँच जाती है और बिफर कर रोने लगती है।

कल भोला को जब यह निश्चय हो गया कि उसका खेत किसी तरह नहीं बच सकता, तब वह घर नहीं लौट सका। एक बार उसके मन में आया कि अब पंछी को बसेरा छोड़ ही देना चाहिए, लेकिन फिर वह पाँच वर्ष पहले वाली काली रात, उसके सिर पर भूत की तरह सवार हो गयी।

—मेरी यह नन्हीं-सी दुनिया कौन उजाड़ रहा है? यह तिवारी? हाँ यही, चलो उसी का गला घोट देता हूँ और वह रात के अँधेरे मे डग बढ़ाता हुआ, कोठी के दरवाज़े पर पहुँच गया। दरबान सो रहे थे। तिवारी सामने ही सोया था। भोला के हाथ ऐंठे, पर इसने तो अपना खेत बचाया है। सब अपना बचाने की कोशिश करते हैं। सबके अपने स्वार्थ....पर न्याय? न्याय तो अफसर करता है न!

—तो सारा दोष उस इन्जीनियर का है। धूर्त है, वह। वही सारे अनरथ की जड है। वह दौड़ता हुआ उसके कैम्प पहुँच गया। चपरासी सो रहे थे। कैम्प के द्वार के ठीक सामने पड़ी चारपाई पर इन्जीनियर की बीवी सोयी थी। उसका चेहरा लालटेन के हल्के प्रकाश में चमक रहा था। उसके होठों पर अजीब-से मोह-स्वप्न की मुस्कान व्याप्त थी। उसके माथे की बिंदिया....वह काँप गया।—गुलाबो, मेरी गुलाबो! कितना दुख सहती हो तुम मेरे साथ....

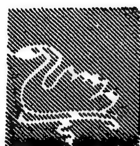
—जाने कहाँ की है यह बेचारी! मारी-मारी फिरती है! उसका सारा शरीर काँपने लगा। यह तो नौकर है....इसका क्या दोष?

—सरकार दोषी है, सरकार!—उसकी भौंहों पर बल पड़ गये। होंठ फड़कने लगे। वह घूम कर सिवान में भागना चाहता था कि उसे सहसा ख्याल आया,—लेकिन सरकार को क्या मालूम कि मेरे पास वही एक खेत है, मैंने पाँच बरस में आधे पेट खा कर उसे खरीदा है?

वह रुक गया। लेकिन वह क्या करे? कहाँ जाए? सोचते-सोचते एक बार फिर वह कैम्प की तरफ घूमा, पर उसकी निगाह इन्जीनियर की पत्नी के चेहरे पर फिर थम गयी। नींद से बोझिल पलको की छाया मे रोशनी की पतली, काँपती रेखाओं को देखते-देखते उसे कई मिनट लग गये। गुलाबी की कोमल बरौनियाँ और आँसुओं मे तिरती, बड़ी बड़ी, आम की फाँक-सी आँखे, उसके आगे नाच कर रह गयीं।—कितना सब्र होता है इन आँखों मे! कितनी ममता, कितना त्याग!.... वह भूल गया, सब कुछ भूल गया। इसी बीच जाग-जूग हो गया और लोग अपनी चारपाइयों से उठ कर दौड़े, तो भोला उन्हें वहीं खड़ा मिला।

भाग तो सकता था वह, पर भागा क्यों नहीं ? यह आप खुद सोचिए। भूमिहीन, श्रमजीवी भोला, पुलिस, तिवारी जी, इन्जीनियर और सरकार की हिरासत में है, इसलिए चोर अथवा खूनी कुछ भी कह सकते हैं उसे, क्योंकि गुलाबी के पास तो अब दोने की पत्तियाँ भी नहीं रहीं।

*



बातचीत

जैसे अखबारों में पहले पन्ने पर एक खास खबर दी जाती है, और उसके लिए पत्रकार, न जाने कितनी खबरों की जाँच-पड़ताल करते हैं, वैसे ही, गाँवों मे कुछ मौखिक पत्र निकलते है, जिनके पत्रकारो का काम रोज़ न रोज एक नया मसाला खोज निकालना और फिर उसमे नमक-मिर्च लगा कर, हुक्के के धुएँ के साथ उड़ाना ही होता है। प्रायः इस काम को मनोयोग पूर्वक करने वालों के मुँह मे दाँतो की कमी होती है, जिससे वे बातों को मसूढे से चबा-चबा कर सरस बनाते है और फिर बुजुर्गी का सुबूतनामा लगा कर, इस चौपाल से उस चौपाल तक फैलाया करते है। क्या करें, दूसरा काम जो नहीं रहता, उन्हें।

कभी-कभी तो सितबिया धोबिन की चुनरी ही को लेकर बात खड़ी हो जाती है। फिर क्या, बूढ़े चौथी जवान गभड़ू बन जाते है। बिना दाँत के मसूढ़ों मे एक मशीन की-सी गति आ जाती है और होंठ बार-बार एक दूसरे से टक्कर लेते रहते हैं। नन्ही-नन्हीं कीचर से भरी आँखों मे एक भाषा बोलने लगती है और जबान कतरनी की तरह कच्चर-कच्चर चलती रहती है।

"आज टिमकिया आया है न! देखा सितबिया का ठाट-बाट, जैसे सरग की तिरिया अपने गाँव मे उतर आयी हो। अभी मैं उस ओर से आ रहा था तो जग्गू वाली कोलिया मे मिल गयी। छब्बू बरई के यहाँ से पान खा कर लौट रही थी। बाँह मे बाजू-बरेखी, कलाई मे

कँगना और पैर मे मोटे-मोटे झाँझ, मुँह मे पान दबाये, मनमाना मुस्कराती झमक-झमक चली जा रही थी।"

"लाज-हया तो सब धो-धा कर पी गयी है।" गजाधर कुछ मुँह बिचका कर बोला और हुक्के से चिलम उतार कर ज़मीन पर उलट दी, फिर तमाखू के कोयले को अँगुलियों से फोरने लगा।

चौथी ने बडे जतन से अपने गाढे के कुरते मे हाथ डाल कर, सुर्ती निकालते हुए कहा, "नहीं भाई! तुम लोगों की दूसरी बात है। अभी शरीर में खून-पानी है और वह भी तो जवान है। किसी आसरे से तो नहीं लजाती। मुझको देख कर तो दीवार से सट कर, ऐसी सिकुड जाती है कि क्या कोई दुलहिन लजाएगी।"

रामू बरई वहीं चारपाई के पास एक मोढ़े पर बैठा था। घुटने तक की हल्के कत्थई रंग की धोती, कंधे पर एक गमछा और गले मे तुलसी की मोटी जड़ की एक माला, दाढ़ी और सिर के सब बाल सफा। हाथ में एक तिनका लिये धूल को इधर-उधर करके खेत की नन्हीं-नन्हीं क्यारियाँ बना रहा था। वह एकाएक बोल उठा, "दादा बूढ़े हो गये, पर इनकी चुलबुलाहट न गयी। सारा गाँव तो हाय-हाय कर रहा है, ताल मे धान की पकी-पकायी फसल थोड़े से पानी बिना चौपट हो रही है, इनको बस सितबिया का पान, मनकिया की धोती, बुधुआ-रनिया सनई के खेत मे साथ-साथ घास काट रहे थे; न जाने क्या-क्या सूझते रहते है। अरे भइया, अगर दो दिन मे पानी न बरसा तो पेट के लाले पड जाएँगे, लाले, फिर यह सब लहँगा-टिकुली बिक जाएगी। जब पेट भरता है, तभी संसार का सुख-सोहाग अच्छा लगता है।"

"अभी क्यों घबरा गये रामू! गाँधी टोपी के राज मे जो न हो

जाए। जानते हो, जिस देश का राजा पापी होता है, वहीं भूरा पडता है, अकाल आता है, भुखमरी होती है। जल्दी-जल्दी गहना-गीठो बेंच कर ऊसर-पापर तो लिखा लिया। उसमे धान क्या होगा, खाक़! सरकार से कहो, पानी का भी इन्तिजाम करे।" गजाधर ने मुस्कराते हुए चिढ़ाने के लिए कहा।

"चौथी ने कहा, "अभी लगान भी बढ़ने वाली है रामू! यह मत समझना कि जमीन मिल गयी तो राजा हो गये। जब सरकारी करिन्दा वरंट ले कर घर के सामने खड़े होंगे, तब दुगुना मजा मिलेगा। पंचाइत का सुख तो भोग लिया, अब इसका भी देख लेना।"

रामू ने गदोरी पर सुर्ती रखते हुए कहा, "हर बिधा हमी को तो पिसना है, दादा! मरेंगे, जरेंगे, अन्न उपजाएँगे पर मजा दूसरे मारेंगे। देखो न! पंचाइत बनी थी किसानो के फायदे के लिए, सो सरपंच हो ही गये गयादीन ठाकुर। खूब मुट्ठी गरम होती है।"

"चौथी ने नीचे के होठों को तालू से सटाते हुए व्यंग्य किया, "क्या समझते थे जग्गी हो जाता सरपंच?

रामू की आँखें ज़मीन मे धँस गयीं, जैसे कोई वज्र-सी धरती पर फावडे से प्रहार करके उसकी उर्वरा छाती के अंधकार को सूरज की सुनहरी किरणों की नोंक से बेधता चला जा रहा हो—रामू देखता गया, देखता गया....

—जग्गी का बाप चोर था और गयादीन ठाकुर के बाप से उससे दाँत काटी रोटी की दोस्ती थी। क्या शरीर दी थी भगवाँन ने उसे कि घोडे को भी पीछे छोड जाए। घर की साधारण दीवारों को तो वह

चौफाल मे कूद जाता। एक-एक रात में हज़ारो का सोना-चाँदी ला देना, ठाकुर के एक इशारे पर किसी को बना-बिगाड़ देना; उसके बाये हाथ का काम था।

जमुनापार के डाँके की कहानी उसकी आँखों के आगे नाच गयी।—सावन की अँधेरी, काली रात मे महाजन की दुमंजिला कोठी पर से जब वह जेवरो का बक्सा ले कर चला, तो लोगों ने नीचे चारों ओर से मकान घेर लिया....जग्गी ने सोचा-विचारा, जेवरो को पीठ पर गमछे से बाँध लिया और ऊपर से लाठी ले कर कूद पड़ा। एक नहीं, दस-दस लाठियाँ तो एक साथ उसके ऊपर गिरी होंगी, पर जब वह उठा तो मिनटों मे मैदान साफ हो गया। लोगो ने पीछा किया, पर उसने तरह नहीं दी। एक मील तक रुक-रुक कर लाठी चलाता, जमुना तक आया और फिर नदी मे कूद पड़ा।

—दूसरे दिन पुलिस की पगडी से सारा गाँव लाल हो गया। कोई घर के बाहर तक नहीं निकलता था, पर वाह रे ठाकुर और वाह रे शान! दरवाजे पर कड़ाहियाँ चढ़ गयी थीं। पुलिस वाले खा-पी रहे थे और जग्गी का बाप वहीं ठाकुर के पास बैठा, चिलम पीता रहा। शाम हुए थानेदार ने ठाकुर को बुला कर कहा, "हमारे पास घोडा नहीं है, ठाकुर!"

—ठाकुर ने कहा, "कल सूरज निकलने से पहले पहुँच जाएगा।"

चौथी ने बात जोड़ी "क्यों चुप हो गये रामू! जग्गी याद आ गया क्या? भाई, मेरे कहने का बिलकुल मतलब यह नहीं है कि वह चोर है। हम लोग तो सबजानते है न! यह गयादीन की बेइमानी है, पर बदनामी तो हो ही गयी। वह चोरी की ही तो सजा भुगत रहा है।"

रामू ने सिर ऊपर करते हुए कहा, "चाहे जो कहो दादा। पर जग्गी....'बड़ा दिलेर, बड़ा ईमानदार; यही न !" दादा ने बीच ही में बात छीन ली, "पर जानते हो, उसका बाप यहाँ का मशहूर चोर था। गयादीन ठाकुर के बाप से बडी दोस्ती थी, पर बुढ़ाई समय ठाकुर ने किसी दुश्मन का खलिहान फूँकने की बात की। इस पर वह बिगड़ गया। फिर क्या था, ठाकुर जलभुन गये। मौका ढूँढ़ने लगे। एक दिन एक चोरी की जाँच आयी तो उसके घर की तलाशी करा दी, उसमें सेंध मारनेवाली सेंबरी मिल गयी और बुड्ढे को एक साल की सजा हो गयी।

"ठाकुर की भी हालत उतनी अच्छी नहीं रह गयी थी। इन्हीं गयादीन ठाकुर की एक बडी बहन थी—जवान-सामरथ। उसकी शादी करनी थी, पर टका पास मे नहीं था। बडे आदमी ठहरे, कम-से-कम दस-बीस हजार तो तिलक ही के लिए चाहिए। लडकी जग्गी के बाप को काका कहा करती थी और जब वह जेल जाने लगा तो लड़की दरवाज़े पर खड़ी-खड़ी बहुत देर तक रोती रही। जग्गी भी वही खडा था। ठाकुर को पकड़ कर रोने लगा, पर तीर कमान से निकल चुका था। ठाकुर बहुत पछताये।

"जग्गी का बाप उन्हीं दिनों जेल से छूटा, जब लड़की की शादी ठीक हो गयी थी। तिलक के बदले ठाकुर ने बीस हज़ार का जेवर देना ही मान लिया था पर वह कहाँ से आता। जग्गी का बाप तो अब नाराज़ न था। एक दिन लड़की घर से निकली तो वह सामने पड़ गया। एकाएक उसके मुँह से निकल पड़ा, "पाँव लागीं काका! और बूढ़े का कलेजा पसीज गया। उसने आँख उठा कर देखा, लड़की बदल गयी है। हाथ-पाँव में हल्दी लगी है। कलाई मे कंगन

बँधा है। बूढा रो पड़ा और लड़की भी खड़ी-खड़ी रोती रही।

"बूढे ने अपने को सँभालते हुए कहा, 'फिकर न करना बिटिया, अभी तो मैं जिन्दा हूँ, जब मेरी जरूरत हो, कहला भेजना।'

"ठाकुर बगल मे बैठे यह बातें सुन रहे थे। उनका मन अपने पिछले पापों के कारण जल कर राख हो गया था, पर एकाएक उसकी बातें सुन कर, उनका जी भर आया। वे दौड कर जग्गी के बाप के गले से सट कर फफक-फफक कर रोने लगे।

"बूढ़े के मुँह से इतना ही निकला, 'भैया मैं चोर ही नहीं आदमी भी हूँ। तुम्हारी सब दिक्कतें समझ रहा हूँ पर मुझे अपने से अलग मत समझना। शादी की तैयारी करो, सारे जेवरों का इन्तिजाम मैं करूँगा।'

"जब शादी का दिन आया तो सारा गाँव तमाशा देखने जुटा था। रामू लोग समझते थे, आज ठाकुर बेआबरू हो जाएगा, पर एकाएक जब जग्गी के बाप ने जेवरों की पेटियाँ खोलनी शुरू की तो सब दग रह गये।"

चौथी ने एक ज़ोर की दम लगायी और हुक्का फेर दिया। गजाधर ने हुक्का थामते हुए कहा, "जग्गी तो चोर नहीं था चौथी दादा, फिर पुलिसवालों ने उसे कैसे फँसा दिया!"

"तुम नहीं जानते बेटा अभी, अरे यह सारी बुराई रुपयों की है। जिसे लालच न लग जाए, मद की। जग्गी ने जिस इज्जत-बात से गाँव में जिनगी बितायी, कोई माई का लाल क्या बिताएगा, मुदा गयादीन को तो जानते ही हो; दूसरे की बहू-बेटियों पर निगाह रखना, रात को

खेत कटवा लेना, खरिहान फुँकवा देना; इसी मे तो इनकी ठकुरी है। फिर आज कल सरपच हो गये हैं। किसी खेत-बारी के झगडे मे तकरार हो गयी जग्गो से, फिर उन्होने बदला निकालने का यही उपाय निकाला और सबूत भी यह कि जिसका बाप चोर था, वह भला इतना नेक कब होने लगा।"

रामू ने कहा, "मुझको तो बस इतनी ही फिकिर है भैया कि बेचारे की बीबी भी इसी बीच चल बसी और उसका मुँह भी न देख पायी।"

कुआर की चिलचिलाती धूप उतार पर हो चली थी और नीम की छाया, धीरे-धीरे पूरब की ओर खिसकने लगी थी। रामू के ऊपर सूरज की किरणें पड़ने लगी थीं। उसने मोढ़ा खिसका कर छाया मे कर लिया।

गजाधर भी उठे कि चारपाई भी खींच कर छाया में कर लें। चौथी दादा भी उठ खड़े हुए और कहने लगे, "जग्गी तो अब जल्दी ही छूट कर आ जाएगा, रामू!"

"हाँ, एक महीने से भी कम रह गये हैं दादा! यदि छुट्टी-उट्टी कटी तो शायद दो ही चार दिन मे आ जाए।" और रामू भी उठ खड़ा हुआ।

गजाधर ने कहा, "बैठो भाई!"

पर रामू ने कहा, "नहीं, अब चली-चला हो, खाना पीना भी तो नहीं हुआ है?"

"क्या खाना-पीना होगा भइया! इस ठाले-ठूली में भला गाँव भर मे कहीं दोपहर को आग जलती है? यही रस-दाना पर कट

जाती है। मुझसे तो वह भी नही होता। पतोहुओं ने किसी दिन दया दिखाई, तो दाने को पीस-पास कर बुकनी बना दी, नही तो रस ही पी कर रह जाना पड़ता है। दाँत क्या गये, खाने-पीने का सारा सवाद ही चला गया।" चौथी दादा ने कहा और गमछे की खूँट से सुर्ती की गर्द नाक मे भरते हुए, सूरज की ओर देख कर, दो छींकें लीं और घर की ओर चल पडे।

*



हंसा जाई अकेला

वहाँ तक तो सब साथ थे, लेकिन अब कोई भी दो एक साथ नहीं रहा। दस-के-दसों अलग-अलग खेतों मे अपनी पिंडलियाँ खुजलाते, हाँफ रहे थे।

"समझाते-समझाते उमिर बीत गयी, पर यह माटी का माधो ही रह गया। ससुर मिले, तो कस कर मरम्मत कर दी जाए आज!" बाबा अपने फूटे हुए घुटने से खून पोछते हुए ठठा कर हँसे।

पास के खेत मे फँसे मगनू सिंह हँसी के मारे लोट-पोट होते हुए उनके पास पहुँचे।

"पकड़ तो नहीं गया ससुरा? बाप रे....भैया, वे सब आ तो नहीं रहे है?" और वह लपक कर चार कदम भागे, पर बाबा की अडिगता ने उन्हे रोक लिया। दोनों आदमी चुपचाप इधर-उधर देखने लगे।

सावन-भादों की काली रात, रिम-झिम बूँदे पड रही थीं।

"का किया जाय, रास्ता भी तो छूट गया। पता नहीं कहाँ हैं, हम लोग।"

"किसी मेंड़ पर चढ़ कर, इधर-उधर देखा जाय। मेरा तो घुटना फूट गया है।"

"बुढ़वा कैसे हुक्का पटक के दौड़ा था!"

"अरे भइया, कुछ न पूछो !" मगनू हो-होकरके हँसने लगे। इसी बीच ज़ोर की आवाज सुनाई पडी :

हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही।
मल ले, धो ले, नहा ले, खा ले
करना हो सो कर ले,
ई देहिया....

दस-एक बीघे के इर्द-गिर्द, अँधेरे और भय मे धँसी हुई पूरी मंडली सिमट आयी। चेहरे किसी के नही दिखाई पडे, पर हँसी के मारे सबका पेट फूल रहा था। उसी बीच थूक घोटने की-सी आवाज़ करता हुआ, वह आया और ज़ोर से हँसने लगा।

"होई गयी गलती भइया ! मैं का जानूँ कि मेहरिया है। ? मझा, तुम मे से कोई रुक गया है।"

मगनू ने कहा, "सरऊ, साँड हो रहे हो, अब मरद-मेहरारू मे भी तुम्हे भेद नहीं दिखाई पड़ता ?"

"नाहीं, भाय, जब ठोकर खा कर गिरने को हुए न, मैंने सहारे के लिए उसे पकड़ लिया। फिर जो मालूम हुआ, तो हकबका गया। तभी बुढ़वा ने एक लाठी जमा दी। खैर कहो निकल भागा।" उसने झुक कर अपनी टाँगों पर हाथ फेरा। नीचे से ऊपर तक झरबेरी के काँटे चुभे हुए थे।

"ससुरे को बीच में कर लो !" बाबा ने कहा।

मगनू कहने लगे, "चलो मेहरारू तो छू लिया, ससुरे की किस्मत में लिखी तो है नहीं !"

उसे लोग हंसा कहते हैं, काला-चिट्टा, बहुत ही तगड़ा आदमी है। उसके भारी चेहरे मे मटर-सी आँखे और आलू-सी नाक, उसके व्यक्तित्व के विस्तार को बहुत सीमित कर देती है। सीने पर उगे हुए बाल, किसी भींट पर उगी हुई घास का बोध कराते हैं। घुटने तक की धोती और मारकीन का दुगजी गमछा उसका पहनावा है। वैसे उसके पास एक दोहरा कुर्त्ता भी है, पर वह मोके-झोके या ठारी के दिनों मे ही निकालता है। कुर्त्ता पहन कर निकलने पर, गाँव के लड़के उसी तरह उसका पीछा करने लगते हैं, जैसे किसी भालू का नाच दिखाने वाले मदारी का।

"हसा दादा दुलहा बने है, दुलहा!" और नन्हे-नन्हें चूहों की तरह उसके शरीर पर रेंगने लगते हैं। कोई चुटइया उखाड़ता है, तो कोई कान मे पूरी-की-पूरी अँगुली डाल देता है। कोई लकड़ी के टुकडे से नाक खुजलाने लगता है, तो कोई उसकी बड़ी-बड़ी छातियों को मुँह मे लेकर, हंसा माई, हंसा माई, का नारा लगाने लगता है। इसी बीच एक मोटा सोटा आ जाता है, वह हंसा के कंधे से सटा कर लगा दिया जाता है और हंसा दो-एक बार उस पर अँगुलियाँ दौड़ा कर, आलाप भरते-भरते रुक कर कहता है, "बस न!"

और लड़के चिल्ला पड़ते हैं, "नहीं, दादा! अब हो जाय!" कोई पैर से लटक जाता है, तो कोई हाथ से। फिर वह मगन हो कर गाने लगता है, "हंसा जाई अकेला, ई, देहिआ ना रही...."

उस दिन बारह बजे रात को गाँव लौट कर, हंसा सीधे बाबा के दालान में आया। लालटेन जलायी गयी। हंसा अपनी पिंडलियों में धँसे

झरबेरी के काँटों को चुनने लगा। जैसे जाड़े मे चिल्लर पड जाते हैं, उसी तरह हंसा के टाँग मे काँटे गडे थे।

बाबा ने कहा, "कहाँ जाएगा ठोंकने-पकाने इतनी रात को, यहीं दो रोटी खा ले !" और झरबेरियों के कॉटे देखे, तो उन्हे जैसे आज पहली बार हंसा की भीतरी जिन्दगी की झॉकी दिखाई दी।—इतनी खेत-बारी, ऐसा घर-दुआर, पर एक मेहरारू के बिना बिलल्ला की तरह घूमता रहता है। बाबा उठ कर हंसा की पिंडलियों से काँटे बीनने लगे।

उसे रतौंधी का रोग है। इसीलिए रात को वह गॉव से बाहर नहीं जाता। वह तो मजगवॉ का दंगल था, जो उसे खींच ले गया। बाबा सरताज है पहलवानों के, भला क्यो न जाते ! बेर डूब गयी वहीं, चले तो अँधेरा घिर आया था। पाँच मील का रास्ता था। हंसा दस लोगों की टोली के बीच मे चल रहा था। कई बार उसके पॉव लोगो से लडे, तो लोगों ने गालियाँ दीं और उसे पीछे कर दिया। हंसा गालियों का बुरा नहीं मानता। वह बहुत-सारे काम गाली सुनने के लिए ही करता है। गाँव के बूढ़ों-बुजुर्गों की इस दुआ से उसे मोह है।

वह पीछे-पीछे आ रहा था। रास्ते मे एक गाँव आया, तो गलियों के घुमाव-फिराव मे वह जरा पीछे रह गया। एक झोपड़ी के आगे, एक बूढ़ा बैठा हुक्की गरमाये था। उसकी जवान बहू किसी काम से बाहर आयी थी, दस आदमियों की लम्बी कतार देख कर बगल में खड़ी हो गयी। फिर हंसा के आगे से वह निकल जाने को हुई, तो संयोग से हंसा के पाँव उससे लड़ गये और अँधेरे में गिरते-गिरते वह हंसा के बाजुओं मे आ गयी। बहू चीख उठी। बूढा हुक्की फेंक कर

डंडा लिये दौड़ा। लेकिन हंसा निकल गया। दूसरा डंडा उसकी बहू की ही पीठ पर पड़ा। यह गये, वह गये और सारी मडली रात के अँधेरे मे खो गयी। सबकी तो आँखें साथ दे रही थीं, पर हंसा खाइयों-खदकों मे गिरता-पड़ता भागता रहा।

बाबा काँटा बीनते जा रहे थे। हंसा अपनी मटर-सी आँखों को बार-बार अपने भालू के-से बालों मे धँसाता—हाथ को काँटे मिल जाते, पर आँखे न खोज पातीं। रह रह कर रास्ते की वह घटना उसके सामने नाच जाती।—क्या सोचती होगी बेचारी? और वह बाबा की ओर देखने लगता।

"बड़ी चूक हो गयी, भइया। समझो, निकल भागे किसी तरह, नहीं तो जाने का कहती दुनिया? हमे तो यही सोच कर और लाज लग रही थी कि तुम भी साथ थे।"

"अरे, यह क्या कहता है, हंसा!"

"यही कि आपके साथ ऐसे लोग रहते है। कितना नाव-गाँव है! कितनी हँसाई होती!"

हंसा कभी कोई बात सोचता नहीं, पर आज बार-बार उसका दिमाग़ उलझ जाता था। अगर भइया चाहे . तो ..

इसी बीच आजी पूड़ियाँ थाल मे परसे बाहर आयीं। हंसा हडबड़ा कर उठ गया। बहुत दिन पर भउजी को देखा था। रात न होती, तो वह बाहर क्यों आतीं। उसने सलाम किया। थाल थामने ही जा रहा था कि उन्होने मजाक कर दिया, "कहीं डड़वार डाके रहे का, बबुआ, जो काँटा बिनाय रहा है!"

"कुछ न कहो, भउजी!" हंसा कह ही रहा था कि बाबा बोल

उठे, "फँसी गया था हंसवा आज, वह तो खैर मनाओ, बच गया, नहीं तो वह पडती कि याद करता ! एक औरत को इसने....

"अब हँसी-ठिठोली छोड कर, बियाह करो ! जब तक देह कड़ी है, दुनिया-जहान है, नहीं तो रोटी के भी लाले पड़ जाएँगे। कहते क्यों नहीं अपने भइया से ? गूँगे-बहरे, कुत्ते-बिल्ली सबका तो बियाह रचाते रहते है, पर तुम्हारा धियान नहीं करते। खेत-बारी, जगह-जमीन सब तो है।"

बाबा कुछ नहीं बोले, लगा सेध पर धर गये हो। आजी जाने लगीं, तो बाबा ने तेल भेजने को कहा।

तेल की कटोरी ले कर हंसा बाबा के पैताने जा बैठा।

"अपने पैरों मे लगाओ न हसा ? दरद कम हो जाएगा।"

"गजब कहते हो, भइया ! अरे लगाया भी है कभी तेल !"

और वह बाबा की मोटी रान पर झुक गया।

"मनों तेल पी गयीं ये राने। कितने तो तेल ही लगा कर पहलवान हो गये..." हंसा कहने लगा।

बाबा चुप पड़े रहे। ओरउती से लटकी हुई लालटेन मे गुल पड़ गया था, धुएँ से उसका शीशा काला पड़ चुका था और कालिख ऊपर उड़ने लगी थी।

हंसा उठा और बत्ती बुझा कर लेट गया।

भउजी की बात हंसा के कानों मे गूँज रही थी,—जब तक देह कड़ी है....हंसा ने करवट लेते लेते बूढ़े के डंडे की चोट का हाथ से

अंदाज लिया और भुनभुनाने लगा, "जान-बूझ कर तो कुछ नहीं किया। हम तो भइया की तरह मेहरारू को आँख उठा कर भी नहीं देखते। यह रतौन्ही साली जो न कराये!" उसने इधर-उधर आँख चलायी, पर कुछ नही—सब मटमैला, धुध।

पाला, पडे चाहे पत्थर, काम से खाली हो कर हंसा बाबा के पास जरूर आएगा। कभी देश-विदेश की बात, कभी महाभारत-रामायण की बात। लेकिन 'गन्ही महत्मा' की बात मे उसे बड़ा मजा आता है। किसी ने उसे समझा दिया है कि गाँधी जी अवतारी पुरुष है।

उस दिन दालान मे कोई नहीं था। शाम का वक्त था। बाबा की चारपाई के पास बोरसी मे गोहरी सुलग रही थी। जानवर मन मारे अपनी नाँदों मे मुँह गाडे थे। रिम-झिम पानी बरस रहा था। कलुआ पाँवों से पोली जमीन खोद कर, मुकुड़ी मारे पड़ा था। बीच-बीच मे जब कुटकियाँ काटतीं, तो वह कूँऽ .कूँऽ करके, पाँवों से गर्दन खुजाने लगता। इसी समय एक आदमी पानी से लथ-पथ, कीचड़ मे अपनी साइकिल को खींचता आया और जैसे ही साइकिल खडी करके दालान में घुसने लगा, हंसा ने कहा, "जै हिन्न की; गनेस बाबू!"

"जै हिन्द हसा भाई, जै हिन्द!"

उसने अपने झोले से नोटिसो का पुलिन्दा निकाल कर, बाबा के आगे रख दिया। हंसा बाबा की गोड़वारी बैठ गया। बाबा नोटिस पढ कर बोले, "कैसे होगा, बरखा-बूनी का दिन है!"

हसा कुछ समझ नहीं सका। जब उसका पेट फूलने लगा, तो वह बोल बैठा, "का है भइया!"

कोई सुशीला बहिन आज यहाँ गाधीजी का संदेश सुनाना चाहती हैं। जिला कमेटी की नोटिस है।"

"का लिखा है नोटिस मे ?" हंसा मुँह बा कर उसे देखता बोला, "तनी बाँच दो, भइया। गवनई भी न होगी ?"

"अरे वही, जागा हो बलमुआ गाँधी टोपीवाले .."

हंसा ने खूँटी पर टँगी ढोलक उतारकर गले मे लटका ली और एक ओर पडे फटहे झडे को ले कर लाठी मे टाँग लिया। दो बार ढोलक पीटी। फिर,—जागा हो बलमुआ गन्हीं टोपीवाले आय गइलै .. टोपी वाले आय गइलै....गा कर, ढोलक पर घड़म्-घड़ाम्, धुम-धुम.. घडम्-घड़ाम्, धुम्-धुम् .

मिनटो मे ही पचासों लडके आ जुटे। चल पडा हसा का जलूस।

"सुसिल्ला की गवनई, जौने मे बीर जवाहिर की कहानी है...."

"दल-के-दल लरिका-बच्चा सब....बोलो, बोलो, गन्हीं बाबा की जय !"

और फिर, जागा हो बलमुआ....और हंसा की ढोलक गमकती रही।

क्षण भर मे ही जैसे सारे गाँव को हंसा ने जगा दिया हो। जिधर से देखो, लोग चले आ रहे हैं। लड़के गाधी बाबा को क्या जाने उनके लिए तो हंसा ही सब कुछ था। एक उनके आगे झडा तान कर कहता, "बोलो, बोलो, हंसा दादा की.. !"

कुछ कहते, 'जै', और कुछ, 'छै', फिर जोर की हँसी चारों ओर छा जाती।

कुछ बूढे नाक फुलाते हुए, सुरती की नास ले, अपने सुतलियों के ढेरे पर तेज चक्कर दे कर कहते, "मिल गया ससुर को एक काम। गन्ही बाबा का पायक काहे नहीं हो जाता। कौनो कँगरेसी जात-कुजात मेहरारू मिल जाती। गन्ही को कोई विचार थोडे है, चमार-सियार का छुआ-छिग्का तो खाते है।"

हसा को फुरसत नहीं है। बाबू साहब का तकरपोस और बाबू राम का चमकउआ चादर तो आना ही चाहिए।

बाबा चुपचाप बैठे हैं। धीरे-धीरे गाँव सिमटता आ रहा है। दालान भरता जा रहा है। अँधेरे की गाढी चादर फैलती जा रही है। रिम-झिम पानी बरस रहा है। चार लालटेनें जल रही है।

"बुला तो लिया पानी-बूनी मे। हल्ला भी पूरा मचा दिया। पर ठहरेंगी कहाँ सुशीला ? कुछ खाना-पीना "

"आने पर देख लेगे। अपना घर तो खाली ही है। खाने की भी चिन्ता न करो ! घी है ही, पूड़ी-ऊडी बन जाएगी।" कहता हुआ हसा बाहर निकला।

हंसा सँभाल सॅभाल कर चल रहा था—अँधेरे की वही धुध, वही मटमैलापन। आखिर वह क्या करे कि उसे दिखाई पड़ने लगे। वह एक बच्चे की सहायता से किसी तरह बाबूसाहब के दलान के सामने पहुँच गया। पहाड से तखत को सिर पर बिड़ई रख उठा लिया और किसी तरह रेंगता-रेंगता बाबा के दालान आ पहुँचा।

बाबा बहुत बिगडे, "ससुरा मरने पर लगा है।"

हसा को यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि सुशीला जी आ गयी है। वह बाबा के पास बैठ, उनकी बातें बड़े ध्यान-पूर्वक पीने लगा।

सुशीला जी हंसा के ठीक सामने बैठी थी। लालटेन जल रही थी, पर वह देख नहीं पाता था कि वह कैसी हैं!

—आवाज तो कडी है, और यह गन्ने के ताजे रस-सी महक, कहाँ से आ रही है?

हंसा खो गया। सुशीला का साल-भर पहले का गाना, 'जागा हो बलमुआ गाँधी टोपी वाले आय गइलै. . ,उसके होठो पर थिरक उठा। साँवला-साँवला-सा रंग था, लम्बा-छरहरा बदन, रूखे-रूखे से बाल और तेज आँखें। कैसा अच्छा गाती थीं!—हंसा सोचता रहा।

इसी बीच कीर्तन-प्रवचन हो गया। सुशीला जी ने भी भाषण दिया और सारी ग्राम-मंडली, 'बिना विद्या के भारत देश, दिन-दिन होती है तेरी ख्वारी रे।' गुनगुनाती वापस जाने लगी। हंसा खोया बैठा रहा। खजडी की डिम्-डिम् और झाँझ की झंकार उसके कानो मे गूँजती रही। सुशीला का पैना स्वर उसके हृदय को बेधता रहा, और दगल की शामवाली घटना का भी उसे बार-बार ध्यान आता रहा।—देखो तो इन आँखों को, जो न करा दे!—और उसकी नसों मे रक्त की झनझनाहट भर जाती। एकाएक, 'गन्ही महात्मा की.. ' सुन कर, वह चौंक पड़ा और जोर से चिल्ला पड़ा, 'जय....जय...'

बहुत रात बीत चुकी है। हंसा के घर मे पूड़ियाँ छानने की तैयारी हो रही है। आटा गूथा जा रहा है। तरकारी कट रही है। आग जल रही है। पर भीतर के कमरे की भडरिया से घी कौन निकाले? हंसा वहीं इधर-उधर डोलता है। उसकी आँखें सुशीला जी की आवाज का पीछा कर रही हैं। सुशीला जी कभी कभी संकोच मे पड़तीं है, पर हंसा

के चौडे सीने पर उगे हुए बालों के जंगल मे वह खो जाती हैं। कितना पौरुषी आदमी है !

लेकिन हसा के आगे वह एक छाया-मात्र है, जिनका बस रूप नहीं है आगे, और सब कुछ है।—मीठी-मीठी, थकनभरी आवाज और डाल के ताजे फल जैसी सुगंध। वह बड़ा खुश है। एक औरत के रहने से घर कैसा हो जाता है ! कितना अच्छा लगता है !... वह सोच ही रहा है कि घी की मॉग होती है। हंसा उठता है, पर चारपाई से ठोकर खा कर गिर पडता है। सुशीला जी दौड कर उसे उठाती है। हंसा मारे लाज के डूब जाता है।

धत् तेरी आँखों की ! और वह जल्दी से उठ खड़ा होता है।

सुशीला जी उसका हाथ पकड़े थीं, "चोट तो नहीं आयी !"

घुमची की तरह की ऑखे मुलमुला कर हसा हँसता है। उसके रोएँ भभर आते हैं। उसका कलेजा धडकने लगता है।

कहार कहता है, "हँसा दादा को रतौन्ही है, रतौन्ही।"

"रतौंधी ! तो बताओ, कहाँ है घी ? मैं चलती हूँ, साथ।"

मेनका के कधे पर विश्वामित्र के उलम्ब बाहु। सावन की अँधियारी और बादलो की रिम-झिम। बीच-बीच मे हवा का सर्द झोंका।

दोनों ऑगन पार करते बूँदों मे भींगते है। पीछे से आवाज आती है, "लालटेन दूँ ?"

"एक ही तो है। रहने दो, काम चल जाएगा।"

घर की अँधेरी भंडरिया। दोनों भटकते है। हंसा कुछ बताता है।

सुशीला जी कुछ सुनती हैं। आँख कुछ देखती है। हाथ कुछ टटोलते है। बहरहाल, पता नहीं, कहाँ क्या है?

अँधेरे मे जैसे आँख, तैसे बेआँख। दोंनो को सहारा चाहिए। कभी वह लुढ़कता है, कभी वह लुढ़कती है, और दोनों दृष्टिवान हो जाते है—दिव्यदृष्टिवान।

-

सुबह कुत्तो की झाँव-झाँव के बीच, कारवाँ आगे बढ़ गया। बैलों की घंटियाँ टुनटुनायीं, भुजगे बोले और बाबा ने उठ कर अपना छप्पन पतरीवाला बाँस का छाता उठाया और ताल की ओर चल पडे, निरुआही हो रही थी।

रास्ते मे मगनू सिंह मिल गये, "लग गयी पार हंसवा की नाव!"

'क्या हुआ?"

"कुछ न पूछों, भइया। तुम्हे खबर ही नही, सारे गाँव मे रात ही खबर फैल गयी। यह ससुरा दुआरे बैठाने-लायक नहीं है। कहते थे कि कोई राँड़-रेवा मढ दो इसके गले। कल रात बाबू साहब के यहाँ पंचाइत हुई। तय हुआ कि अब सभा-सोसाइटी की चौकी, गाँव मे नहीं धरी जाएगी। औरत-सौरत का भासन यहाँ नहीं होने पाएगा। बहू-बेटियों पर खराब असर पडता है। बात यह है भइया कि राजा साहब ओट लड़ रहे हैं, कागरेस के खिलाफ। बाबू साहब उनको ओट दिलाना चाहते है। आपके डर से कुछ कह तो सकते न थे। अब मौका मिला है।"

"कैसा मौका?" बाबा झुँझला कर बोले।

अगनू आ कर उनके छाते के नीचे खडे हो गये। बोले, "उलट दिया हसवा ने कल रात !"

"क्या मतलब ?"

"सच मानो, खाना-पीना नहीं हुआ। जब बहुत देर होने लगी, तो बगा ने लालटेन ले कर देखा, और बाहर निकल कर, सारे गॉव म ढिंढोरा पीट दिया। अभी तो सर-सामान ले कर, घाट तक पहुँचाने गया है।"

बाबा चुपचाप आगे बढ गये। इस तरह की बात सुन कर बरदाश्त करना उनके लिए कठिन है, पर न जाने क्यों उन्हे हॅसी आ रही थी। तभी दूर से हंसा की भारी आवाज सुनाई दी ?

'जग बेल्हमौलू जुलुम कइलू ननदी .. जग..
बरम्हा के मोहलू, बिसुनू, के मोहलू
सिव जी के नचिया नचौलू मोरी ननदी .जग....'

बाबा खड़े थे। हंसा धीरे-धीरे पास आ गया। अँधेरा छुँट गया था। हंसा डर गया।—कैसे खड़ा हूँ भइया के सामने, कैसे ?

कुछ देर दोनों चुप रहे। बाबा ने देखा, हंसा के हाथों मे खद्दर के कुछ कपड़े थे, पर उसकी निगाह नीचे ज़मीन मे धँसी थी।

"हंसा !" बाबा बड़ी कड़ी आवाज़ मे बोले, "जहॉ पहुँच गये हो, वहाँ से वापस नहीं आना होगा !"

"भइया, बोटी-बोटी कट जाऊँगा, पर यह कैसे हो सकता है !"

हंसा जाने लगा, तो बाबा ने कहा, "घर जा कर सीधा-समान बाँधे आना। आज मछरी पकड़वाऊँगा, वहीं खावाँ पर बनेगी।"

"अच्छा, भइया !" कह कर हंसा अपनी बटम-सी आँखों का पोछता हुआ चला गया।"

गाँव मे चुनाव की धूम मची थी। बाबू साहब बभनौटी के साथ कॉग्रेस का विरोध कर रहे थे। उनके पेड़ों पर इश्तिहार टॉग दिये जाते, तो उनके आदमी उखाड़ देते। किसान बुलवाये जाते, उन्हे धमकाया जाता। खेत निकाल लेने की, जानवरो को हँकवा देने की बात कही जाती और हसा-सुशीला की कहानी का प्रचार किया जाता,—भ्रष्ट है सब ! इनका कोई दीन-धरम नहीं है ! गन्ही तो तेली है।..

और हंसा अब पूरा स्वयंसेवक बन गया है। खद्दर का कुर्ता-धोती और हाथ की लम्बी लाठी मे तिरंगा। बगल मे बिगुल लटका रहता है और वह बापू के सदेश की परची बॉटता फिरता है।

"बाबू साहब जो कहे मान लो ! पूड़ी-मिठाई राजा के तम्मू में खाओ ! खरचा-खोराक बाबू साहब से लो, और मोटर मे बैठो ! लेकिन कँगरेस का बक्सा याद रखो ! वहाँ जा कर, खाना-पीना भूल जाओ ! कँगरेस तुम्हारे राज के लिए लड़ती है। बेदखली बंद होगी ! छूआ-छूत बद होगा। जनता का राज होगा। एक बार बोलो, बोलो गन्हीं महात्मा की जय !....जय ..

घर-घर में, कंठ-कंठ में सुशीला के मनोहर गानों की धुनें गूँजने लगीं। गाँव के बच्चे हंसा दादा के पीछे, हाथो में अखबार की रंग कर बनायी झंडियाँ लिये इधर-से-उधर चक्कर लगाया करते थे।

उन्हीं दिनो गाँव मे रामलीला होने को थी। बाबू साहब की पार्टी के राम-लद्दमण बने थे। पर रावण बननेवाला कोई नहीं मिलता था। लोग कहते, रावण बननेवाला मर जाता है। कोई तैयार न होता था।

बाबा दशमी के मालिक थे। हंसा कैसे बरदाश्त करता कि लीला खराब हो। ऊपर से सुशीला जी लीला खत्म होने पर भाषण करनेवाली थी। हसा सोचने लगा, क्या हो ? सहसा लडकों ने तालियाँ बजायीं और हसा दादा को घेर लिया। जल्दी-जल्दी काला चोगा रावण के गले मे डाल दिया गया। सिर पर पगड़ी बाँध कर दस मुँहवाला चेहरा हसा दादा ने पहन लिया। हाथ मे तलवार ली और गरज कर बोले, "मै रावण हूँ, कहाँ है दुष्ट राम ?"

एक बच्चे ने अपनी छुडी में लगा हुआ तिरगा झट दशानन के सिर पर खोस दिया और सब लोग जोर से हँसने लगे। उसी भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा, "गन्ही महात्मा की जय... !" "जय.... हो ! ."

रावण भाषण देने लगा, "भाइयो ! राम राजा था। देखो, छोटी जात का कोई कभी राम नहीं बनने पाता है। राक्षस सब बनते हैं। बिराहिम, कालू, भुलई, फेदर, सभी की पालटी है, हमारी। यह जनता की लडाई है। बोल दो धावा ?" और हसा हाथ-पाँव हिलाता आगे को चल पड़ा। पीछे-पीछे सारी राक्षसी सेना। किसानों के बदर बने लड़के भी अपना चेहरा लगाये, गदा लिये, जनता की पार्टी मे शामिल हो गये। राम बेचारे अकेले बैठे रह गये। रामायण बंद हो गयी। तिवारी चिल्लाने लगा, पर कौन सुनता है !

"गन्हीं महतमा की जय !....हंसा दादा की जय....!"

बाबा हँसी के मारे लोट-पोट हो रहे थे। उनसे कुछ कहते ही नहीं बनता था। राक्षसी सेना के काले रग मे रँगे मुँह और हाथों मे तिरंगे झंडे देख कर, लोग राम के लिए खरीदी मालाएँ, हंसा के ही ऊपर फेंकने लगे।

इसी बीच सुशीला जी तीर की तरह भीड़ मे घुसीं, "कौन बना है रावण ? क्या तिरगा इसीलिए है ?" उन्होने हाथ से चेहरे को ठेल दिया। सहसा हसा को देख कर, वह पसीने-पसीने हो गयीं।

"यही स्वयसेवक हो ! बदनाम करते हो झडे को ! बद करो यह सारा तमाशा, होने दो रामलीला ठीक से !"

सब लोग अपनी जगहों पर लौट गये। बाबा चुपचाप खडे थे। सुशीला जी अपना झोला सँभाले उनकी बगल आ खडी हुईं।

लड़ाई चलती रही। नगाडे और ढोल बजते रहे। सठे के रँगे हुए तीर छूटते रहे। पर रावण मरे, तो क्यों मरे ! चौपाई बार-बार टूटती। व्यास बार-बार कहता, "सो जाओ !" पर कौन सुनता है ! हंसा की सेना क्यों हारे ?

इसी समय लक्ष्मण को जमीन से ठोकर लगी। वह लुढ़क पड़े। उनका मुकुट गिर गया। आगे-पीछे दौड़ते-दौड़ते राम को चक्कर आ गया, और उनको उल्टी होने लगी। सारे मेले मे शोर मच गया, "जीत गयी जनता की फौज। हंसा दादा की पाल्टी ऐसे ही वोट जीत लेगी !"

इधर दिन-रात सुशीला जी खँजड़ी बजाती, घूमती रहतीं और रात हंसा के घर लौट आतीं।

दूसरे दल के लोगो ने चिट्ठियाँ भिजवायीं।—सुशीला जी को यहाँ से बुला लिया जाए। जनता पर बुरा प्रभाव पड रहा है। चुनाव के दो दिन पहले उन्हे नोटिस मिली कि वह बापू के आदर्शों को तोड़ रही है, इसलिए उन्हे काम से अलग किया जाता है।

वह हँस पड़ी थीं, ईश्वर ने पति से अलग किया और अब बापू के नकली चेले उन्हें जनता से अलग करना चाहते है!

उनकी खँजड़ी और जोर से बजने लगी। उनका स्वर और तेज हो गया।

चुनाव के दो दिन रह गये। सुशीला जी बीमार पड़ गयीं। हंसा के घर मे उनका डेरा पड़ा था। वह बुखार की जलन सह रही थीं, पर किसी को अपने पास बैठने नहीं देती थीं। रात जब हंसा लौटता, तो वह उससे कहती, "तुम सुनाओ अपना भजन, और हंसा बिना कुछ सोचे-विचारे गाने लगता।

'हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही....'

फिर प्रचार का समाचार ले कर, वह उसके रोयें भरे सीने मे मुँह छिपा लेतीं।

चुनाव का दिन आ गया, लेकिन सुशीला जी बिस्तर से नहीं उठीं। किसानो की जय-जयकार करती हुई टोलियाँ गुजरतीं, तो वह अपने बिस्तार मे तड़प कर रह जातीं। हंसा उन्हे बहुत रोकता, पर वह उठ कर उनसे मिलतीं। बाबा बहुत समझाते, पर न मानतीं।

चुनाव के दिन डोली में उठा कर वह पोलिंग पर ले जायी गयी। वहीं पेड़ के नीचे बैठे-बैठे उन्हें कई बार चक्कर आया और बेहोश हुईं।

ओट पड़ता रहा। किसान राजा साहब के कैम्प मे खाना खाते, उनकी मोटर मे आते, पर ओट डालते कॉग्रेस के बक्स मे। उन्हें सुराज मिलेगा, उन्हे आजादी मिलेगी; यही सब सोचते थे।

तीसरे पहर जोर की बारिश आयी। सुशीला जी छाया मे जाते जाते भींग गयीं। बाबा ने उन्हे डोली मे बैठा कर, घर भेज दिया। चुनाव चलता रहा।

हंसा भूत की तरह काम मे जुटा था। बहुत देर पर कभी उसे सुशीला की याद आती, तो मन को दबा कर फिर परची बॉटने लगता। बहुत कम ओट राजा के बक्से मे गिरे। शाम हो गयी। राजा का तम्बू हारे हुए कर्मचारियों से भर गया। हंसा उन्हे देख कर जाने क्यो क्रोध से जल रहा था। उसे बार-बार सुशीला की याद आ रही थी।

"भइया, कुछ और होना चाहिए।"

"मुझे चले जाने दो, हंसा।"

और पच्चीस-तीस लोग हॅसिया ले कर राजा साहब के तम्बू की डोरियो के पास खड़े हो गये। कौन जाने क्यों खड़े है! हंसा ने विजय का बिगुल फूॅका और सारा तम्बू एक मिनट मे ज़मीन पर था। जोर का शोर मचा। किसानो ने जय-जयकार की, और लोग अपने घरों को वापस चले गये।

सुशीला जी को निमोनिया हो गया। उनकी साँस फस गयी। बाबा रात-दिन उनके पास बैठे रहे। हंसा ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया, पर फ़ायदा न हुआ। वह बार-बार महात्मा जी का नाम लेतीं, हंसा से उसका भजन सुनतीं और आँखे बन्द कर लेतीं।

चुनाव का नतीजा सुनाया गया, तो नेता लोग मोटर पर चढ़ कर सुशीला जी से माफी माँगने आये। पर सुशीला जी ने मुँह फेर लिया, जैसे वह कहती हों, "मैं तुम्हारे करतब जानती हूँ।

और हंसा उठ कर बाहर चला गया।

अन्त में एक दिन सुशीला जी की साँस बन्द हो गयी। हाय मच गयी! बच्चे फूट-फूट कर रोने लगे। हंसा ने बकरी के लिए पत्ता तोड़नेवाली लग्गी में तिरंगा टाँग कर, हाथो से ऊपर उठा लिया और अपना बिगुल फूँकने लगा। उसकी हँसी लोगों के मन में भय पैदा करने लगी पर वह हँसता रहा।

आज तक, गन्ही महात्मा, जवाहिरलाल और जनता की फउज, यही तीन शब्द वह जानता है। लड़के अब भी उसे उसी तरह घेरे रहते हैं। पर पहाड़ से तखत को वह उठा नहीं सकता। हाँ, उठा कर ले जानेवालों को देख कर वह ज़ोर-ज़ोर से हँसता है और घंटों हँसता रहता है।

उसके खेत मे घास उगी है। मकान ढह गया है। पर लग्गी मे फटहा तिरंगा और सुशीला का दिया हुआ बिगुल अब भी टँगा रहता है। कभी-कभी वह गंदे क़ाग़ज दीवारों पर सटाता फिरता है और कभी सारे गाँव की गलियाँ साफ कर आता है।

आज़ादी मिली, तो उसे रुपये मिले। राजनीतिक पीड़ित था, वह। पर वह रुपयों की गड्डी ले कर हँसता रहा, और •फिर उन्हे गाँव की दीवारो मे एक-एक कर टाँग आया।

दो बार लोग उसे आगरे ले गये। पर कुछ ही दिनों बाद फिर 'हंसा जाई अकेला।' का स्वर गाँव की फिजाँ मे गूँजने लगता।

अब भी कभी-कभी वह आज़ादी लेने की कसमे खाता है। उसके तमतमाये हुए चेहरे की नसे तन जाती है और वह अपना बिगुल फूँकता हुआ, कभी धान के खेतो, कभी ईख और मकाई के खेतो की मेड़ों पर घूमता हुआ, गाया करता है,

'हंसा जाई अकेला . '



चाँद का टुकड़ा

आज जो नये-नये मजदूर गाँव में आये थे, उन पर सहुआइन की कड़ी निगाह थी। कौन कैसा है, कहाँ से आया है, कुछ गाँठ मे दाम भी है या इसी सड़क की खुदाई से इलाका खरीदने का मंसूबा बाँध कर आया है, आदि। इस पूरी छान-बीन मे उसकी निगाह कहीं अटकी तो सनोहर ही पर आ कर।

'कौन है रे तू, जो चौखटे पर चढ़ा बइठा है ? देखता नहीं है कि बेर बिसय रही है। दिया-बत्ती तो हो लेने दे !"

उदास सनोहर को जैसे किसी ने गहरी नींद मे झटका दे कर जगाया हो। वह सहुआइन के चौडे झरोखेदार फाटक के एक ओर लगे, मोटे खम्भे से उठँगा, तो उसे लगा, जैसे वह घर की झिलँगा चारपाई मे आराम से पड गया था।

"कहाँ से आये हो ? लच्छन ठीक नहीं जान पड़ता। वह भी तो सब आदमी ही है न ! कब से आते-जाते हैं, मुदा. ......"

सहुआइन बात पूरी भी न कर पाई थी कि सनहोर उठ खड़ा हुआ। उसकी नसे चटखीं, जैसे शरीर का भार उन पर एकाएक लद गया हो। उसने कमर सीधी की। एक बार अपने हाथो को झटकारा और गमछे को कधे पर फेक कर धीरे-धीरे कुएँ की जगत पर जा बैठा।

—कुछ विचित्र है भगवानकी माया, ठीक इसी तरह की दूकान तो मेरे गाँव मे भी है, पूरब की ओर उस की भी दुआर है, दरवाजे

पर इसी तरह सेन्हुर-घी से टीके गनेश महाराज बने हुए है। इसी तरह का जगतदार कुआँ, इसी तरह गाँव के ठीक बीचोबीच घर और सहुआइनियाँ....? उसे जाने क्या सोच कर हँसी आ गयी और पिघलते हुए चाँद का एक उदास टुकड़ा, किसी धुएँ की तसवीर की तरह मिटता हुआ, सहुआइनियाँ की बखरी की खपरैल से उडता, चला गया। सनोहर की आँखें दूर तक उसी का पीछा करती रहीं।

उसी समय एक लड़की खोइछा मे अनाज भरे आयी और तराजू के पलड़े मे भर से गिरा कर, आँचल को झटकारने लगी। धूल से सारा घर भर गया, पर कोई बोला नहीं। सहुआइन ने एक मैले टिन से, जो मक्खियो से पूरा ढँका हुआ था, कुछ अनरसे निकाल कर लापरवाही से थमाये, और वह वहीं से उन्हे खाती हुई, चली गयी। बगल मे चार-पाँच मजदूर गोलाई मे बैठे अपनी गाँजे की चिलम खुरचते रहे, तभी उनमे से एक ने कहा, "तनिक खमीरा माँग, तो दम लगे!" और उसने अपने सिर पर बँधी पगड़ी को खोल कर खूँट से एक नन्हीं-सी पुड़िया निकाली।

दूसरे ने जवाब दिया, "भइया, हम नहीं जाते। जाने क्या बकने लगे ससुरी! उसे तो जवान ही भाते है।"

सनोहर सब देखता रहा, जैसे किसी नवागतुक बच्चे की तरह एक-एक चीज को पहचान रहा हो।

—यही सब तो उसके अपने गाँव मे भी होता था, पर वह कभी गड़ा क्यो नहीं उसकी आँखो मे? बीच-बीच मे उसका मन इसी प्रश्न पर लौट आता था और वह स्मृतियों की दुनिया मे चक्कर काटने लगता था।

किसी कापालिक के सिर-सी, धुएँ भरी उसकी झोपडी और उसमे भाड़ जलाये बैठी उसकी माँ का कलूटा, बूढा चेहरा उसके आगे नाचने लगा। फिर एक-एक कर के उसे वे बखरियाँ याद आयीं :

—ठाकुरबाड़ी की मालकिन कितनी दयालु है। सकोचवस जब वह पानी भर कर जल्दी से भाग आता, तो पीछे-पीछे बुलावा आ जाता—'बडा लजाधुर है सनोहर! कहा न एक बार कि जाते जाते पूछ लिया कर..' और एक लोटा गाढा मट्ठा और एक भेली गुड हाथ पर रख देतीं।

—और वह बियाजखोर की मेहरारू. बाप रे बाप.. !—'क्यो रे दढ़िजार के, सेत मे पानी भरता है क्या, जो गगरा-बाल्टी भी नहीं माँजता !' और राम-राम कहते हुए, वह कपडे का एक फटा टुकड़ा लपेटे, सीने पर चढ़ने को तैयार हो जाती। उसकी ओर देखना भी मुसकिल हो जाता। नंगी ही तो रहती थी, वह!

—लेकिन वह चनरमा! सनोहर जैसे इस एक खयाल से अपने को दूर नहीं कर पा रहा था। कुछ भी वह सोचता, कुछ भी करता, पर चनरमा उसकी आँखो से ओझल नहीं होती।—सहुअइनियाँ कितना चिढती, कितना मना करती, पर आँगन मे बाल्टी खुटकते ही चनरमा अपनी धोती चुनने लगती। बाल्टी-लोटा उठाती और कुएँ की जगत पर आ बैठती। वहीं नहाती, कपडे छाँटती और वह बीच-बीच मे गगरे से उसकी बाल्टी भरता जाता।. .

सनोहर सोचता जा रहा था, तभी सामने से एक मज़दूर चिलम लिये उठा और उसके आगे आ कर खडा हो गया।

"कंकड़ है?"

"मैं नहीं पीता।"

"बीड़ी-तमाखू कुछ नहीं ?"

"कुछ नहीं।"

"तो चलाय चुके फरसा, बच्चू !" और वह लौट गया। मंडली मे कुछ मजाक हुआ और कई आँखें एकाएक उसकी ओर लौट पड़ीं। फिर हँसी और खाँसी के फौआरे साथ छूटे। मडली उठ गयी। सहुअइनियाँ ने पिसान-दाल तौल कर, एक-एक को दिया और सब अपने-अपने गमछे मे बाँध कर उठ खडे हुए। एक ने पीली दुअन्नी दी तो काफ़ी देर बक-झक हुई और उसे अपने गमछे का आटा तराजू मे गिरा देना पडा। एक ने पैसा नहीं दिया, तो उसे तब तक के लिए, जब तक वह पैसा न दे; अपनी धोती वहीं धरनी पडी। सनोहर ने सुना, सहुअइनियाँ चिल्ला कर कह रही थी, "का ठिकाना तुम्हार लोग का, आज इहाँ, कल उहाँ।"

लोगो ने बहुत समझाया, "आज ही काम पर आया है, हफ्तेवारी मिलती है न!" पर वह एक न मानी और कुड़बुडाती रही। धीरे-धीरे सब चले गये। जिसने सनोहर को साथ चल कर आटा दिलाने की बात कही थी, शायद वह भी। सनोहर बैठा रहा।

कातिक का शुक्ल पक्ष था। कुएँ पर बाल्टियो की खड़खडाह और गगरियों की भक् भक् बढ़ती जा रही थी। दोनों हाथो मे पानी से भरे हुए मिट्टी के घड़ों के साथ, पीठ पर लदी हुई रस्सियाँ देख कर, सनोहर को फिर अपने गाँव का कुआँ याद आ गया था पर उसके पेट मे जैसे कुछ जल रहा था। उसका कलेजा सिकुड़ता जा रहा था। उसकी नसे तनती जा रही थीं। लगता था, उबकाई हो जाएगी।— पर यहाँ, इस जगह ? यह तो ठीक नहीं है। क्यो न वह उठ चले।

गमछे को बिछा कर कहीं सो रहे, तो शायद उसे आराम मिल जाय। वह उठ खड़ा हुआ। जगत पर से, नीचे के पहले जीने पर पाँव रखा ही था कि पीछे से किसी ने रस्सी से उसकी पीठ मे धक्का दिया,

"चला नहीं जात है, का!"

सनोहर ने पीछे देखा और सहसा उस के मुँह से निकल पड़ा "चनरमा....?" लड़की भुनभुनाती, अपनी पायल झुनकाती, चली गयी, "चनरमा....चनरमा! बड़ा चनरमा वाला आया! अपना मुँह नहीं देखता।"

—पर तेल मे डूबे, खुले हुए, वैसे ही लम्बे बाल, वैसा ही चाँद के टुकडे-सा मुखड़ा, वैसी ही कटहल के कोये की तरह बड़ी-बडी आँखें, वैसी ही मुँदरी की तरह की कमर और हाथी की-सी मस्तानी चाल! सनोहर को जैसे काठ मार गया हो। वह क्षण भर, जैसे अवाक्-सा ताकता रह गया। फिर सहसा उसे बडा डर लगा।—यह सब क्या है! वह अपने ही गाँव मे तो नहीं है? या उसके साथ कोई प्रेतलीला तो नहीं हो रही है? यहाँ तो मैं जो देखता हूँ; वही मेरा है—अपना, मैं सब को पहचानता हूँ, और मुझे....? वह कुछ देर तक सोचता रहा, फिर चला गया

सनोहर की चुप्पी से मेठ नाराज था। दूसरे, सभी मजदूर एक ही जगह तो काम नहीं कर सकते? उसने कंकड़ियों वाली जो जमीन अब तक छोड़ रखी थी, उसी पर सनोहर को लगा दिया। तीन-चार छोकरे मिट्टी उठाने को कर दिये। फावडे बजने लगे। मिट्टी सड़क पर गँजने लगी। ककडियों की छत सनोहर के फरसे से उखडने लगी। फावडा कभी चनक कर बिछल जाता और अधकटा कंकड उछल कर इधर

उधर फैल जाता, पर दूसरे वार मे सनोहर की नसो का तनाव कुछ और बढ़ जाता और फावडा कंकडो की छाती फाड़ता हुआ मिट्टी मे धँसता चला जाता। दोपहर तक तीन घरीं और छे दूहे खड़ी हो गयी। ककरीट के झौवे को ढोते-ढोते चारों लडके थक गये, पर खोदी हुई मिट्टी का ढेर लगा रहा। सनोहर बीच-बीच मे फावडे के बेंट पर अपने शरीर का पूरा भार लाद कर, आराम कर लेता और पसीने की बूँदे अँगुलियो से काछ कर, इधर-उधर झिटक देता, फिर काम मे जुट जाता।

देहात के इस इलाके मे यह सड़क स्वतंत्रता की पहली निशानी है। जौनपुर-बनारस की सरहद पर गोमती के दक्षिण, यह एक ऐसी जगह है, जहाँ मोटरें नहीं जा पातीं, इसलिए यह नेताओ की उपेक्षिता भूमि है। राजनीति के सम्पर्क मे न आने का सबसे बड़ा कारण मोटरों का न आ सकना ही है। इसलिए इस बड़े इलाके के निवासी केवल वोट देते हैं और वह भी कांग्रेस को। शासन मे प्रतिनिधित्व नहीं करते।

सनोहर इसी इलाक़े के एक छोर पर बसी, नन्हीं-सी बस्ती से दस मील चल कर, मज़दूरी करने आया है। ज़रूरत उसे नहीं थी, इसकी। घर मे खाना-पीना चल जाता था। माँ भाड़ जलाती थी। बहन बरतन मॉजती थी। वह खुद चार बखरियॉ पकडे हुए था, पर एकाएक बहन की शादी-की बात सिर पर देख कर, वह बिचल गया था। बूढ़ी माँ, अभी दो बरस पहले कुंम्भ के मेले मे पिस कर मरे, अपने पति को भूल भी न पायी थी। रात-दिन उस की माँड़े से भरी आँखे बिसूरती रहती थीं कि एक नयी फिक्र सवार हो गयी।

सुबह उठ कर सरकार को अंगुलियाँ तोड़ कर गाली देती। नेताओं को नाम ले-ले कर सरापती। उसे लगता, जैसे इन्ही लोगों ने बुला कर, उसके आदमी का गला घोंट दिया है। लोग बहुत समझाते, कहते कि किसी ने उसे बुलाया थोड़े ही था, पर वह एक न मानती।

कुछ दिन से वह लड़की को ले कर रात-दिन रोती। सनोहर को कोसती। बाप के रहने से यह काम कब का हो गया होता, यह सब कहती और सनोहर भी अपनी दुलारी को देख कर दुखी हो जाता। उसका शरीर, रूप-रंग सब; उसे उसकी हीनता का बोध कराता, पर गाँव छोड़ना उसे बहुत खलता। गाँव की अमराइयो, बसवटो और अनवरत प्रवाहित गोमती की तरल धार मे उसका प्राण बस गया था।

बात रुकी थी, तो दो पियरी, बाजू-बरेखी और बीस-पचीस रुपयो पर। उसने जब सुना कि सरकारी काम अपने इलाके मे भी हो रहा है, तो वह एक दिन कधे पर गमछा टाँग कर चल पड़ा था और आज, जब ककरीट पर फावडा चलाने से उसकी नसे पिघलती जा रही थीं और भूख से पेट की अँतड़ियाँ सूख कर, बार-बार उसे बेहोशी के नजदीक पहुँचा रही थीं, तो उसे चनरमा का चाँद-सा मुखडा नहीं याद आता था। याद आती थी दुलारी, सुहाग के सपनो मे डूबी हुई—पीले हाथ-पाँव वाली भोली दुलहिन, जिसके माथे पर चाँदी के झब्बे झूल रहे थे—जिसके हाथों मे बाजू की घुड्डी लटक रही थी। उसे लगता, जैसे आँसुओ से भींगी दुलारी को वह डोले मे बैठा रहा है।

सनोहर के फावडे ज़मीन मे धँसते गये। दोपहर की तेज़ धूप में वह काम करता रहा। शाम तक चार रुपये का काम! मजदूरो की आँखे टँग गयीं।

"ससुरा मर जाएगा, कहीं पेट काट कर रुपया कमाया जाता है।"

"कहाँ से ले आये पिसान-दाल, गाँठ मे कौडी भी है ?"

"चल-चल हम दिला देते है, कैसे न देगी ससुरी....!"

सनोहर नहीं उठा। वही एक नीम की जड से उठँग कर बैठ गया। धीरे-धीरे मजदूर चले गये। कातिक की चाँदनी, जुते खेतो के ढेलो पर आ कर बैठ गयी। सडक पर फेंकी हुई ऊबड-खाबड़, मज़दूरों के पसीने से लथपथ मिट्टी का ढेर, अपने दूधिया दाँत निकाल कर हँसने लगा और वहीं बगल मे मिट्टी को छाँट कर नाप के लिए छोड़ी, सनोहर की छे ढूहे, दुलारी की छे आकृतियों की तरह उसे रिझाने लगीं।

—भइया सिर दुखात है का हो... तेल ठोक दें ?

—कचपचिया मूँड़ पर आ गयी है। माई जान ले, तो रहने न दे। चुप्पे चलो, खा लो। हमार तो अँखिया ही नहीं लगी। भूख के मारे परान चला गया, मुदा कवर न उठा।

—अब तो तुम्हारा ही सहारा है, भइया। बापू तो हम को अधजल मे छोड गये।

—ठकुरनियाँ तुम का गाली देत रही का, भइया ? छोड़ दो बखरी। दो रोटी कम ही खाएँगे। बड़ी चली सान बघारने !

—न जाओ भइया....! बिदेस मे तकलीफ होगी। जाने कइसा पड़े, का होय।

—बीरनऽ . मोरे बीरनऽऽ .

सनोहर अकचका कर उठ बैठा। यह सब क्या सुन रहा हूँ, मैं ? हुडुक और मजीरे की आवाज़ अब भी उस के कानो में गूँज रही थी। दुलारी के रोने की करुण ध्वनि उसे परेशान कर रही थी।। वह बार-बार उस आवाज को नकारने की कोशिश करता, पर जैसे वह उसके कानो मे भर गयी थी।

आज चौथे दिन सनोहर फिर गाँव आया। उसके पाँव आज लोहे की तरह अकड़ कर कड़े हो गये थे। सीने मे एक सनसनी सी लगातार चल रही थी। सिर चक्कर खा रहा था। आँखो के आगे रह-रह कर कई रंग छा जाते थे। उसे कुछ भी याद नहीं कि वह कहाँ है ! थोडी देर वह बैठा रहा, फिर दीवार से सट कर लटक गया। कुछ देर आराम करने के बाद उसकी आँखे खुलीं तो एक लड़की रोटी का चोंगा बना कर खाती हुई, वहीं चक्कर काट रही थी। उसके जी मे आया कि दौड़ कर इस लड़की का गला दबा दे और इसकी रोटियाँ छीन कर खा जाय।

मजदूर गाँजा पीते रहे। सहुअइनियाँ के तराजू पर बाट खटकते रहे, पर वह अनसुनी करता रहा। उसने एक बार सोचा, उठ कर उससे आटा ले ले और उसे कच्चा ही फाँक जाय, फिर पानी पी लेगा, पर उससे उठा नहीं गया।

बैलो की घंटियाँ टुनटुनाती रहीं। बकरियाँ मेऽमेऽ करती रहीं। चाँद का टुकड़ा कई बार बादलों मे थिरक कर उसके सामने से गुजर गया, पर वह जैसे कुछ भी नहीं देख पाया। मज़दूर उठे, अपनी दाल-

पिसान ले कर चले गये, पर वह जैसे किसी को याद ही नही आया।

पाँचवे दिन जोर का पानी बरस गया। जमीन पानी मे डूब गयी। कई दिनो के लिए काम बद हो गया। मज़दूरो ने अपना झउआ-फरसा सम्हाला और चले गये। जो बचे थे, उन्होने ठेकेदार से कहा, "साहेब, सनोहर भूखो मर रहा है, उसकी पाँच दिन की मजूरी....!"

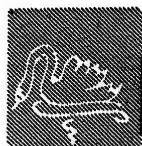
"हफ्ता पूरा भी नही हुआ।" ठेकेदार बिगड कर बोला।

'साहेब, हम कमकर है, बिना खाये दिन भर फरसा चलाएँगे तो कैसे जान बचेगी!"

"बेकार की बात है। वह बीमार होगा। भूख से कोई कैसे मर सकता है?"

लेकिन बरखा के बाद भी, सनोहर का पाँच दिनो मे खोदी हुई गडाहियों की बीस ढूहे, जैसी-की-तैसी बनी हुई थीं। बरसात उन्हे मिटा नही सकी थी, क्योकि वे केवल मिट्टी की ही नहीं थीं। सनोहर ने ककरीट खोदा था। वे उसकी दुलारी थीं—एक नही, बीस। सनोहर उन्हे अब भी देख रहा था और सहुअइनियाँ उसे डाँट रही थी, "दाढिजार के घर से चलेगे, तो यह नही कि दो मुट्ठी पिसान-दाल बाँध ले। जाने कवन बहिन-मतारी बइठी है परदेस मे! अब डोलना नहीं दुआर छोड़ कर! खा पी कर सुत रह! और तू छबिया, इसको खिला कर एक खटिया दे देना, दो दिन से भुइयाँ पड़ा है।"

*



प्रलय और मनुष्य

थकी हुई लहरें, रह-रह कर यहाँ अपना दम तोड़ती हैं और उनके मुँह से निकला हुआ सफ़ेद झाग, धार से कटे इस कोंझे मे इस तरह भर गया है, कि यह किनारेवाली बाँसों की कोठी, ज़मीन से नहीं, इसी झाग से उगी लगती है।

हाऽऽ-आऽऽ-आँम्....हाऽऽ-आऽऽ-आम्... पानी गँदले आसमान तक ऊँचे रोलर पर चढ़ा, कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी चक्करदार भँवर बना कर, कभी जवान पागल की तरह हाऽ-आऽऽ-हा....आऽऽ चिल्लाता, छाती पीटता, ऊपर चढ़ा आ रहा है।

आम की वह पुलुगी अब डूबी, अब डूबी ! दूर से अर्र्र्र्.... हर्र्र्....धारा को चीरता हुआ समूचा पेड़ नये मकान की दीवार से आ रुका। धार क्रुद्ध है, पछाड़ खाती है। सफेद भेंड़े की तरह, पीछे हट-हट कर, टक्कर लेती है। पानी बाँसों ऊपर जा कर, बारूद के गोले की तरह फूटता है, फौवारा बन जाता है।....वह गया, गया, हर्र्....हम् ! ढह गया मकान, जैसे वहाँ था ही नहीं, कुछ। और अब दूर, बहुत दूर, बहुत सारे लकड़ी के टुकडे, टोटे, धरने, कड़ियाँ नागों की तरह उग आये और धार के साथ भागे जा रहे हैं।

धार ने ऐंठ कर घमंड से देखा, ऐंऽ-हॉम्....ऐंऽ-हाँम्....एक बहुत बड़ा कगार टूट कर गिरा और वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

"बड़ा अकड़ कर खड़ा था, महारानी !" फुदक कर मेझुकी बोली

और छटकती हुई दूर चली गयी। मगर गोते लगा कर पानी की सतह पर आया ही था कि मेभ्रुकी उचक कर, उसकी पीठ पर बैठ गयी। पहिना पानी को चीरता हुआ, धार की ओर चढ रहा था। मेभ्रुकी कूद कर उसके आगे पहुँची, "वाह रे ढीठ! मौत आ गयी क्या तेरी, देखता नहीं, महारानी की सवारी आ रही है!"

हवा ज़ोर की बहने लगी, हर्र्-हर्... हर्र्। लहर उठी और पहिना के नथुने फूल गये। चेल्हवा छटकता हुआ आया और महारानी के आगे चमक कर कहने लगा, "दूर-दूर से घूम आया, महारानी! कोई राह रोकनेवाला नहीं, कोई अवरोध नही।"

सोइस ज़ुम् से ऊपर आयी, "आदमी नहीं दीखा कहीं?"

"आदमी?" हो ऽऽहाऽऽहाऽऽहाऽऽ... होऽऽहाऽऽऽ...धार व्यग्य से अट्टहास करने लगी। "वातास!" उसने कड़क कर आवाज दी। सारी सृष्टि मे भय छा गया।

"लहरों को ऊँचा करो! मैं मनुष्य को देखूँगी—बेचारे मनुष्य को!"

लहरों का उत्ताल नर्त्तन! चार-चार गज ऊँची लहरों की खाईं, लहरों की खंदक।

"वह भागा जा रहा है, महारानी, सिर पर खाट और बरतन-भाँडे, गोद में बच्चा और पीछे...."

कछुई मुँह उचका कर देख रही थी। मेभ्रुकी बोल उठी, "व्याहता है, महरानी जी। दूसरा दिन होता, तो गोद में उठा कर उसके पैरों की महावर को भींगने से बचा लेता।"

इसी समय भाषा-शास्त्री मेढक का आविर्भाव हुआ। मेभ्रुकी मारे

लाज के वहीं पानी मे गड़ गयी। धार मुसकुरा कर रह गयी। मेढक बोल उठा, "सहसा वसुधा पर आपका प्रताप छा गया है, महारानी जी! आदमी अपनी भाषा खो चुका है। उसकी बोली स्वयं वही नहीं समझता। उसकी बीवी, उसके बच्चे, सब जैसे अर्थहीन भाषा बोल रहे है। उसे कोई नहीं सुनता। वह देखिए, आपके इशारे पर लहरें ऊपर चढ़ गयीं। आदमी लहरो पर चारपाई बिछा, उस पर अपने बच्चे को बिठा कर, उस बबूल पर चढ़ गया। बच्चा बह रहा है। माँ पछाड़ खा कर लहरो पर बेसुध बहती जा रही है और आदमी टँगा है बबूल के काँटों पर, जिसे दूसरे दिन बचा कर चला जाता था। बबूल की छाँह की हँसी उड़ा कर, साहित्य मे उपमा के लिए इस्तेमाल करता था।"

धार फिर हँसी, "कहाँ गयी ममता इसकी—साहस, पौरुष और बुद्धि ?" वह फिर हँसने लगी—हुड़्....हुड़्...करके लहरों का समताल पर नर्तक होने लगा। मेढक ने किसी तरह साँस ली।

"उस पर दो विषधर लटके है, चार चूहे और दो नेवले, जाने कितने बिच्छू, गोजर और बिच्छुखोपड़े !"

सोंइस ने दुखी हो कर अपनी नाक पानी के ऊपर करते हुए कहा। पर लहरो ने गुस्सा हो कर ज़ोर का धक्का दिया और उसने पानी मे अपने को छिपा लिया।

मेढक गम्भीर हो कर बोल उठा, "सारे जंतु अपना अवगुण छोड़ चुके है, रानी जी ! कोई किसी को कष्ट नहीं दे सकता। सब पर आप का एक-सा अंकुश है। सचमुच शेर और बकरी को एक घाट पानी पिलानेवाला राज है, आपका !"

धार गम्भीर हो गयी—योग्य शासक की तरह विचार-मग्न !

"पर मनुष्य का भरोसा नहीं ! हुर्-हुरर्....हुर्-हुरर....जैसे

चक्की पीसे जाने की-सी आवाज चारों ओर व्याप्त हो गयी। जलचर अपनी जबान दबा कर सतह के नीचे घुस गये। बच्चा अब भी चारपाई पर खेलता जा रहा था। एक साँप थक कर चारपाई की पाटी से सट गया और एक मुर्दा बकरी फूल कर साँप के पास लगी, बह रही थी। रह-रह कर साँप को धक्का लगता, पर वह सहारे को कैसे छोड़े? बच्चा अपना मासूम हाथ उसकी ओर बढ़ा रहा है। मेभ्रकी चारपाई की पाटी पर जा बैठी,—आँखो मे काजल, माथे पर डिठौना, कैसी तरल हँसी है होठो पर!

"तुम्हे आसक्ति हो रही है, मेभुकी! महारानी के राज मे मोह का कोई स्थान नहीं।" मेढक जाने कहाँ से चिल्लाया और मेभुकी उचक कर पानी मे कूद पड़ी। कड़ाके की गरज हुई और लपलपाती हुई आग की एक रेखा, पानी की सतह से, महारानी के पाँव चूमती, दूर चली गयी। साथ ही वरुण को गुप्त आदेश भी ले गयी। भय की कालिमा और भी गाढ़ी हो आयी।

मार्ग-निर्देशक चेल्हवा छटक कर आया और फूट-फूट कर आँसू बहाने लगा। अंग-रक्षक सोईस सूँ... सूँ करती पानी की सतह पर लेट गयी। मेभुकी उसकी पीठ पर बैठ कर, चारों ओर मेढक की आहट लेने लगी। तभी एकाएक अपने दोनों पिछले पाँव रबर की तरह फैलाता, मुँह बाये, हुच्....हुच्.. हुच् पानी उगलता, मेढक आया और महरानी के कदमों पर सिर रख कर बोला, "इस मायाकृत अंधकार को काटिए, रानी जी! आप का सारा अनुचर समुदाय त्रस्त है। मनुष्य तो अवाक् हो ही गया है। उसकी निस्तेज और आशंका से भरी आँखें आपके चरणों पर लगी हैं। चराचर के सभी जीव-जंतु, भयातुर-से इधर-उधर भाग रहे हैं। पवन को आदेश दें, महारानी, वरुण से कहें, कि वह रुक जाएँ! वर्ना प्रलय...."

धार करवट लेने लगी—हुड़्-हुड़् करके लहरें फट गयीं, "मैं केवल मनुष्य के बारे मे सुनना चाहती हूँ। वह क्या कर रहा है, उसका तत्र क्या सोच रहा है ?"

सूँ सूँ की आवाज के साथ थोड़ा पानी हटा और सोइस अपना मुँह निकाल कर बोली, "मनुष्य अजेय है, देवी! उसकी चिन्ताग्रस्त आँखें यह बता रही है, कि वह कुछ सोच रहा है। क्षण-भर को वह हत्बुद्धि हो गया है, पर उसकी शक्तियाँ तो अपनी जगह है ही। उसका तत्र हमारे सीने पर दौड़नेवाले यत्र-यान ले कर चल पड़ा है।"

"बद करो यह बकवास ?" धार कड़क कर बोली। हड़ाम्-हड़ाम् का स्वर गूँज उठा। लहरे अपने ऊपर ही उछल पड़ीं और मेढक हवा में कलइया खाता हुआ छप् से पानी मे आ गिरा। कगार करकरा कर टूटने लगे। बड़े-बडे पेड़, लहरो के धक्के से उखड़ने लगे—भरम्-भाँय् ..भरम्-भाँय्....सारा दिक्-दिगंत गूँजने लगा। मनुष्य की चीख खो गयी।

रात विस्तर पर सोया पूरा परिवार लहरों मे खो गया। जानवर चुभकियाँ खाते, घड़ियालों के भोजन बनने लगे। पहिना एक विशाल महुए के तने से जा सटा। उसी पर एक आदमी चिपका था। पहले तो पहिना डरा, पर साहस करके बोला, "तुम्हें क्या हो गया है, यहाँ कैसे ?"

मनुष्य कुछ चौंका। कैसी आवाज है, यह! पर कुछ बोला नहीं। लहर के वार को हाथों से अपनी नाक दबा कर बचाता रहा। फिर लम्बी साँस ले कर, स्वतः बोलने लगा, "हम परिस्थितिवश बिखर जाते हैं! अपने ही गुणों को नहीं पहचान पाते। भटकते हैं, ठोकरें खाते हैं, भले दिनों मे स्वार्थ से अंधे हो जाते हैं, तंत्र को धोखा देते

हैं, जनता का गला काटते हैं ।" और वह सिर पीट कर बच्चो की तरह रोने लगा। पहिना उसे देख रहा था । उसका भी जी भर आया । उसके पावों मे चिपकी जोंकें उसका खून चूस रही थीं । नन्हे नन्हे भौंरे कपड़ो मे सटे थे । उसका हाथ-पाँव फूल गया था । सफ़ेद, सिकुडे हुए चमडे में उसका रक्त जमता जा रहा था । लेकिन उसके हाथ फैले थे, जैसे वह कुछ सँभाल रहा हो । पहिना ने ऊपर देखा, एक नन्हीं-सी बच्ची और एक स्त्री उसी तने मे चिपके थे ।

लहर दूर चली गयी थी । आदमी साँस ले कर बोलने लगा, "मैं इंजीनियर था । तंत्र के काम को किसी तरह रँग कर दिखा देने वाले ठेकेदारों को पूरा रुपया देता था । सीमेन्ट की जगह माटी भरवा देता था । बड़े-बड़े बाँधों मे बालू भरवा कर खडा कर दिया था । इस तरह सामान और पूरा दाम ही हड़प नहीं करता था, बल्कि ठेकेदारों के मुनाफ़े मे आधा हिस्सा ले लेना तो जैसे मेरा अधिकार हो गया था । आज धार की सिर्फ एक ठोकर खा कर, वह मेरा पूरा निर्माण ध्वस्त हो गया ।" वह फिर उसी तरह रोने लगा, और जैसे अपने ही ऊपर गुस्सा हो कर कहता रहा, "मोटरबोट तो थी, फिर बीवी-बच्चों के साथ, किश्ती पर मैं क्यों उतरा, इस पानी मे ? क्या धार का गुस्सा...." आगे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा, क्योंकि धार का अट्टहास आसमान तक गूँज उठा । पहिना भुनभुना कर एक मोटी-सी गाली देता हुआ पानी मे छुप् से सरक गया,—कमीनी हर जगह कान लगाये रहती है ! और लहरों ने जाने कितनी शक्ति से, पूरे महुए के पेड़ को मरोड़ कर दहाने मे गाड़ दिया ।

मेझुकी छटक कर, पानी पर कूदती दूर चली गयी । आगे जा कर देखा तो धार आत्मसंतोष से मुसकरा रही थी । सिघरी उसके कानों

से सटी, जाने क्या फुसफुसा रही थी और घड़ियाल एक पूरे सूअर को जबड़ों मे दबाये, जोर से साँस ले रहा था । हवा बंद हो गयी थी, वरुण विश्राम को जा चुके थे ।

—चेल्हवा नहीं आया । सोइस ने मार्ग का कोई समाचार नहीं दिया । क्या बात हो गयी ? मेढक एक लकड़ी के टुकडे पर बैठा, सोचने लगा । सहसा एक ओर से एक सफ़ेद, गोल चीज़ बहती हुई आयी, मेढक कूद कर उस पर गया, तो मेफ़ुकी को वहाँ एकात मे विश्राम करते देख कर, वह नीचे से ऊपर तक सिहर उठा।

कही महरानी की निगाह न पड जाय, वह सोच ही रहा था कि मेफ़ुकी स्नेह-भरे स्वर मे बोली, "डरो नहीं, यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित है । जरा सरक आओ न, मुझे जाड़ा लग रहा है ।"

मेढक उससे सट गया ।

"यह इस लोक की सबसे बडी ढाल है । इसके पीछे कुछ भी छिप सकता है । देखो न, इसका चँदोआ कैसा नीचे आ गया है, इस धार ने तो...." और दोनों क्षण-भर को उस तुमुल कोलाहल मे खो गये ।

धार चौंकी, हड़ाम्-हड़ाम्-हुड़ुम्....हड़ाम्-हड़ाम्-हुड़म्....! "कहीं कुछ गडबड है ?" सोइस नाक उठा कर बोली और मेढक छटक कर जल्दी मे कूदा, तो जैसे किसी चट्टान पर जा बैठा हो । लेकिन चमड़े और वस्त्र से ढँकी चट्टान, जिसमें नन्हीं घोंघियाँ चिपकी थीं, कई जोंकें इधर-उधर अपने सूँड़ गड़ाये थीं और हेल्सा बार-बार अपना मुँह मार

रहा था । मेढक घूम-घूम कर देखता रहा, फिर चौंक कर हेल्सा के आगे जा बैठा, "क्यों मुँह मार रहे हो पत्थर मे ?"

"पत्थर ही समझो इसे, पर असल मे यह आदमी है । अभी जिसकी टोपी मे . " जैसे वह गलत बात कह गया हो, लाज के मारे चुप हो गया । मेढक डर के मारे काँपने लगा ।—कहीं महरानी तक न पहुँच जाय बात ! हेल्सा कहने लगा, "यह एक सदस्य है असेम्बली का । राजनीति से इसका कोई सम्बन्ध नही, पर राजनीति के बिना अर्थनीति का कोई भी मतलब नहीं होता प्रजातत्र मे, इसलिए चीनी मिल से कमाये दो लाख रुपये लगा कर इसने धारा-सभा की एक सीट खरीद ली । कभी उस पर बैठ जाता, कभी नही, पर इस कुर्ते की हर जेब मे इसने बीसियों संस्थाएँ पाल ली थीं । वे दूध देती थीं । जब मन मे आता, दूह लेता । 'महिला-सेवा-कर्म' से ले कर 'बाल विचार-परिषद्' तक और 'साहित्य-धर्म' से ले कर 'लोक-जीवन-अध्ययन मंडल' तक अपनी सेवाओ का बिस्तार किये था । कब सरकार को कितने चरखे चाहिए, और किस विभाग को कितनी वर्दियाँ चाहिए, फिर चरखे और वर्दी को एक रुपये मे बनवा देना और शेष रुपयों को अमदनी के भंडार में जमा कर लेना, इसके बाँयें हाथ का काम था ।

'लेकिन यह यहाँ कैसे ?" मेढक उसकी तोद पर बिछल कर गिरते-गिरते बचा ।

"यहाँ ?" हेल्सा हँसने लगा, "इसने बाढ़ देख कर तत्काल 'बाढ़-पीड़ित-संघ' बनाया और सबसे पहले स्वयं दस हजार का दान दे कर फंड खड़ा किया । इस सारे क्षेत्र मे अनाज-कपड़ा बाँटने का काम सँभाला । सरकार और जनता से लाखों लिया और किश्तियों

पर चढ़ कर चना-गुड़ बाँटने लगा । लेकिन दुर्भाग्य से महरानी की चपेट मे . " हेल्सा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था, कि लहरें चक्कर खा कर चीत्कार कर उठी। पता नहीं कहाँ गयी वह आदमी की चट्टान और कहाँ गया वह मासभक्षी हेल्सा। पानी उछल-उछल कर अपना सिर धुनने लगा। महारानी तेज़ी से लहरों को दबा कर कई गज नीचे ले जातीं और उस सीध मे, एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक नयी नदी बहने लगती और फिर क्षण ही भर बाद, लहरों को उछाल कर आसमान तक पहुँचा देतीं। जो भी रास्ते मे आता, वह टूट कर टुकडे-टुकडे हो जाता—हुर्... हुरर्. उँम्. उँम्! सोइस सूँ-सूँ करती। घडियाल पानी को छपाक् छपाक् फेकता और मेढक पानी पर इस ओर से कूदता, उस ओर पहुँच जाता।

महारानी क्रुद्ध थीं। कछुई जल्दी-जल्दी उनकी लटें सँभाल रही थी। वे बुदबुदा कर, जैसे अपने ही से कुछ कह रही थीं। चेल्हवा चमक कर उनके आगे खडा हो गया।

"लगाया कुछ पता?" उन्होंने तीखे शब्दों मे कहा और तुरन्त एक भारी-सा चक्करदार पानी का गढ़ा बन गया।

"हाँ, महरानी! वहाँ से रास्ता टेढ़ा हो गया है! हमारे सीधे रास्ते मे ककरीट की एक ऊँची छत है, इसलिए उससे लाचार हो कर हमे ठीक दक्षिण मुड़ जाना पड़ा है। और करीब एक मील दक्षिण जा कर, दो-तीन फर्लांग जमीन छोड़ता हुआ मार्ग फिर हमारे सीध मे आ कर, सीधे पूरब की ओर चला जाता है।

कछुई अपने हाथ-पाँव चलाती, हाँफती आयी और साँस सँभाल कर कुछ बोलना ही चाहती थी, कि सोइस ने सूँ-सूँ करते हुए, अपनी नाक ऊपर की।

"मिट्टी काँप रही है, महरानी। हमारे हमले से हाहाकार मच गया है। कगार टूट रहे है। कंकरीट के ऊपर से लहरें छलक रही है।"

"नहीं-नहीं, महरानी जी!" कछुई ने अपनी गरदन बाहर निकालते हुए, सोइस की बात काट कर कहा, "लहरें, पछाड खा रही है, उनका अंग छिल रहा है, क्योकि वहाँ. वहाँ...." कछुई सहम कर रुक गयी।

"कहो न, डर किस बात का?" धार गम्भीर हो कर बोली।

"आदमी है, रानी जी! बडे-बडे नाव के बेडे को लिये, लहरों को अपने रास्ते से मोड़ रहा है। वह पसीने से लथपथ हो रहा है, पर उसकी पेशानी पर एक अजीब-सी चमक है। मैं तो कॉप कर बेहोश हो रही थी, तभी लहरो ने गुस्से मे उठा कर, मुझे आप के पास फेंक दिया।"

"हाँऽ?" धार ने कहा, और हुड़्....हुड़्. हुड् की ध्वनि लहरों ने चारों ओर फैला दी।

"लेकिन वह मेढक क्या कर रहा है?" महरानी चिढ़ कर बोलीं और मेझुकी का जी काँप गया। महाप्रयाण की बेला मे सुरति कर्म की अशुद्ध क्रिया का अभिशाप उसके मन पर छा गया। वह डर कर बोली, "वहीं तो गये हैं, रानी जी! उन्हे केवल खबर तो देनी नही है। रोहू को साथ ले कर गये हैं। सारा नक्शा बना कर, आदि से अब तक का इतिहास भी तो बटोरना है उन्हें, इसी कारण देर हो रही है।"

धार चुप रही। वरुण आ कर एक पाँव पर खड़ा था। पवन

आज्ञा के लिए मुँह देख रहा था। पर मेझुकी की बात से सब सन्न रह गये। थोड़ी ही देर बाद मेढक अपने पूरे दल-बल के साथ प्रविष्ट हुआ। सारा अनुचर मंडल धार महरानी के चारो ओर, लहरो को अपने पिछले पैरों से काटता हुआ, गुम-सुम बैठा रहा।

मेढक अपने चारो पैर फैला कर, पानी पर बैठते हुए बोला, "संघर्ष बहुत पुराना है, महरानी जी! एक तरह से यह प्रकृति और मनुष्य के आदि संघर्ष का प्रत्यक्ष स्थल है। बहुत पहले से इस टीले के ऊपर बसे गाँव मे मल्लाह और रजभर नामक जातियाँ रहती हैं। इनके पास अधिक भूमि नहीं है। बस अपने-अपने घर और चार-छै कट्ठे भूमि हर एक के पास है, जिसे ये जान से भी ज़्यादा प्यार करते है और उसमे साग-सब्जी उगाते है। सब श्रमिक है। काले, चिट्ठे, तेल से पुते इनके शरीर पर अगर मक्खियाँ बैठे, तो बिछल जाय। मजदूरी करके, नावे चला कर और हमारे बधु-बाधवों को मार कर इनका पेट भरता है।

"बहुत पहले जब आप का मार्ग इधर बनने लगा था, तो इन्होंने धरती की बज्र-सी छत को काट कर इस किनारे की भूमि को ऊँचा कर लिया और पुराने कटाव को पीछे से मोड़ कर, फुटहवा नाम से एक नाला बना दिया है, जो आज तक कभी इस्तेमाल नहीं हुआ, क्योंकि लाख सिर पटकने पर भी उन्होंने लहरों को उधर से रास्ता नहीं दिया, वे कंकरीट की छत से धक्के खा कर पछाड़ खातीं, और टूक टूक हो कर बिखर जाती है। हमारी सेना के कितने ही पुराने सेनानी यहीं शहीद हो चुके हैं। मेरे प्रपितामह, महा भाषाविद...." मेढक की आँख भर आयी। मेझुकी सिसकने लगी। डेड़हा पानी चीरता हुआ मुँह बाये पहुँच कर बोल उठा, "यह तिरिया चरित्तर की बेला नहीं है, मेझुकी!

इस समय चुप रहो !" मेढक ने गुस्सा हो कर उसकी ओर देखा और सोइस ने अपनी पीठ से ऐसा झटका दिया कि वह दूर जा पड़ा। इसी समय एक छप्पर बहता हुआ आया, पर घडियाल ने महरानी की ठहरी हुई सवारी को देख कर, उसे अपनी पीठ से टेक लिया।

मेढक कहने लगा, "तब से कई बार इस पूरे गाँव को आप का कोप-भाजन बनना पडा, पर वीर मनुष्य अपनी नावों के बेडे बाँध कर, लहरों का प्रवाह हमेशा थामते रहे। घर उजड़ गये, फिर बसा लिये, पर इन्होने इस धरती को आज तक नहीं छोड़ा।"

"हूँ !....धरती को आज तक नहीं छोडा !" धार की नसों में गर्म खून खौलने लगा। लहरे तेज़ हो गयीं। क्षण-भर को सारा जल काँपने लगा, जैसे धरती को ही किसी ने नीचे से हिला दिया हो।

"कहते जाओ तुम !" धार गुस्से मे बोली।

"इसलिए आप को मुड़ कर यहाँ से सीधे दक्षिण पथ जाना पड़ता है, बिल्कुल आदमी के मन पर चल कर, और वहाँ से लौट कर फिर यहीं से सीधे पूरब के लिए माग मिल पाता है। तब बलराज राऊत इस बस्ती का सरदार था, और उसी ने यह कंकरीट की छत जुड़वा कर, किनारे को वज्र-सा बना दिया है और इस समय महरानी...." मेढक साँस लेने को रुका ही था कि रोहू बोल उठा, "उसी का प्रपौत्र बसता है, महरानी जी ! बीसियो नावों का बेड़ा बनाये, स्वयं एक भारी किश्ती की डाँड़ थामे, लहरों को इस तरह पीछे मोड़ देता है, जैसे कोई गीदड़ को खदेड़ देता हो। उस कंकरीट की छत पर ज़ोर ही नहीं लग पाता, महरानी जी !"

"अच्छा !" धार की आँखें थोड़ी फैल गयीं। वरुण और भी पास झुक आया। उसकी भूरी लटें धार के पास तक लहराने लगीं और पवन चुपचाप लहरों पर बैठ गया।

सिधरी ने छटक कर बात छीन ली, "देखते ही बनता है उस आदमी को, महरानी जी ! माथे की काली, लहराती लटों पर लाल गाउटी गमछा, कमर मे कसी हुई लँगोट। सारा शरीर जैसे आबनूस की लकड़ी की तरह चमकता है, और आँखे....!" वह रोहू की ओर देख कर मुसकराने लगी।

धार चुप थी। सबका मुँह देख रही थी। मेढक जी कूद कर सोइस की पीठ पर जा बैठे। धार ने उनकी ओर देखा, तो कहने लगे, "हमारे दाहिने 'त्रिहड़ा' नाम का बहुत बडा गाँव है। और इस मोड़ पर है, 'बाबा' का प्रसिद्ध बगइचा, 'गुलरा'। और इधर आपके पेट में बसा हुआ है 'भितरी'। भीतर है न ! यहाँ के आदमी आप के परम दास है। जैसे ही आप की अगवानी होती है, बेचारे अपना डेरा-डम्बर उठा कर रास्ता नापते हैं और इस लोहे की चट्टान पर टक्कर खा कर क्रुद्ध लहरे इस पूरे मील-भर के भू-भाग के ऊपर से बहने लगती है . " सोइस गुड़ुप से पानी मे डूब गयी और बेचारे भाषा विज्ञानी जी के खुले मुँह मे पानी भर गया ! सिधरी मुसकरायी, और घड़ियाल ने आदमी की तारीफ़ से ऊब कर छप्पर से अपनी पीठ हटा ली।

लहरों ने महरानी के डर से पवन को इशारा किया और हर्र्-हर्....हर्र-हर की ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो गयी। छप्पर वहीं भँवर मे डाल कर मरोड़ दी गयी।

धार ने अपने सहयोगियों को ललकारते हुआ कहा, "आदमी ! यही हाय-हाय करता, कुत्तो की तरह जीभ निकाल कर भागनेवाला

कायर आदमी !" हड़ाम्-हड़ाम्-हड्... .लहरे ताडव करने लगीं । धार ने हाथ उठाते हुए, वरुण को ललकारा और पवन को कस कर एक लात लगायी ।

घुड़-घुड़्-घुड्-धडाम्-धड़ाम्.. कंकड़ की छत पर झूमता, विशाल बरगद का पेड़ झुलस कर धराशायी हो गया, जैसे आग की तेज लपट से सारा विश्व झनझना कर सिकुड़ गया हो । हर्र् हर्.. .हर्.... हर्.. अपार जल-वृष्टि होने लगी । उंचासो पवन झकोरने लगे ।

"बहा दो पूरे बेड़े को, लहरों पर पटक कर चूर कर दो ? तोड़ो ककरीट को, लहरे यहीं से सीधा जाएँगी । मार्ग तनिक भी नहीं बदल सकता । आदमी आए तो मेरे रास्ते मे !" धार ने जैसे अपने पूरे वेग को किसी धनुर्धर की प्रत्यंचा की तरह कानों तक चढ़ा लिया । पानी सिमट-कर भूखे पेट की तरह खाली हो गया और प्रत्यचा के छूटते ही पवन वेग से, किसी पहाड़ी की तरह, ऊपर उठ गया। लहरे दौड़ पड़ीं--हड़ाम्-हड़ाम् ! किश्तियाँ एक-दूसरे से टकरायीं और कगार से सटी किश्ती चरचरा कर दाने की तरह टूट गयी । मिट्टी का एक बहुत बड़ा चप्पा टूट कर भल् से गिरा और कई नाँवें मिट्टी से भर गयीं । बसंता का पटौधा डोंगा लहरों के साथ ऊपर उठ कर, फिर वहीं बैठ गया । औरतें चीखने लगीं । बच्चों ने अपनी आँखें ढँक लीं । लहरे लौट गयीं ।

मल्लाहों की पानी से लथपथ मासपेशियाँ थोडी ढीली हो गयीं । बसंता ने हाँक दी, "बेडे को सीधा करो, मुरली को किनारे भेजो, काका थक गये हैं, वह धार के रुख को समझती है ।"

वरुण कोप करके बरसने लगा, पवन एँड़ी का पसीना चोटी

करने लगा, पर नन्हे-नन्हे बच्चे किश्तियो से पानी उलीचते रहे। औरते डाँड सीधा करती रहीं और बसंता लहरों को खदेड़ता रहा।

"यही पिद्दी आदमी की शक्ति थी! ओं....हा ऽ ऽ हा ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ.. एक ही धक्के में इसकी साँस फूल गयी। मेझुकी, देख तो, उन सब का क्या हाल है अब ?"

इसी समय दूसरा कगार टूट कर गिरा और दूसरी ओर की एक किश्ती मिट्टी से एकदम पट गयी। नमंता घबरा गया, "मेरी नाव के कोने से लहरों की टक्कर कगार तक पहुँच रही है। कोई उधर से काट कर एक छोटी-सी किश्ती ले आए और इसके नीचे लगा ले, बहुत जल्दी करे, इस बार धार के लौटने से पहले...."

कोई टस-से-मस नहीं हुआ। क्रुद्ध धार से टक्कर खा कर छोटी नाव जाने कहाँ जा पडे! पर यह बसंता का हुक्म है, धार से लड़ना ही होगा। मुरली बिजली की तरह कगार के नीचे की एक किश्ती पर कूदी और पतवार चलाने लगी। पवन ने पहचाना, वरुण ने इशारा किया और लहरों ने किश्ती को खींच कर धारँ के चरणों मे डाल देना चाहा, लेकिन बसता ?—मुरली अकेली कैसे जाएगी! वह छलाँग मार कर, किश्ती मे पहुँच गया। पतवार से पानी की ओर मार कर, किश्ती को लहरों के सीने पर कर लिया।

धार ने खींचा। किश्ती जैसे निरावलम्ब चली गयी, धार की प्रत्यंचा पर कान तक चढ़ गयी!

"यही दोनों हैं ?" धार ने देखा, तो उसकी आँखों मे खून उतर आया, "कितने ढीठ हैं, दुराग्रही!" और जैसे ब्रह्मास्त्र ही छोड़ दिया हो। बसंता ने नाव ज़रा-टेढ़ी करके, पतवार ऊपर कर ली, दूसरी

ओर कगार को टेक देने के लिए, बॉस को बाहर निकाल लिया। लहरों के धक्के पर किश्ती ऐसे उतर गयी, जैसे किसी ने धार मे फूल चढ़ा दिया हो।

"बस, इसे अब लौटने नहीं देना है!" बसता ने रस्सा उठा कर फेका और मुरली ने छोटी नाव को बडी से जकड कर बाँध दिया और दूसरे सिरे को खींच कर दूसरी नाव से जोड़ दिया। एक बडा-सा बॉस लगा कर छोटी किश्ती को जमीन से साध दिया। मुरली मुसकराने लगी, तो बसंता क्षण-भर को उसे देखता रह गया। उसकी आँखे साफ कह रही थीं, "इस नयी नाव के पूजन मे तू नवरिया गाएगी और हम दोनों हमेशा-हमेशा के लिए...." पर मुरली बिदकती हुई बोली, "इधर क्या देखते हो? लहरे आज बहुत बिगड़ी है। आज रात बीत जाय तो जानो!"

"आज की रात?" बसंता हँसा, "तुम सब जा कर रोटियाँ सेंको, आज रात बेड़ा छोड़ा नहीं जा सकता। हम-सब यहीं रहेगे, पर माई को लेने कौन जाएगा?".

"मैं लाऊँगी जा कर, इसकी चिन्ता न करो। वहाँ गाँव वालों की सहायता को गयी किश्तियाँ तो होगी ही, भैया होगा, मगू काका होंगे. सबको आज रात यहीं बुला लाऊँगी।"

मेझुकी वहीं खड़ी सब सुन रही थी। पहिना ने धीरे से मुँह बा कर उसे निगलना चाहा, पर रोहू की पूँछ से ज़ोर का छपाका खा कर वह बेड़े के बीच घुस गया। मेझुकी जान बचा कर भागी और धार के पास पहुँची। धार उदास सोच मे डूबी पड़ी थी। हुर-हुरुर.. .हुर्....की आवाज़ लहरों के होठों पर चढ़ी थिरक रही थी, जैसे सब कुछ थक कर चूर हो गया था।

पवन घर लौट गया था। वरुण ने चार घंटे की छुट्टी ले ली थी। मेढक जी जाने कहाँ से एक संदूक बहा कर लाये थे और उसी पर बैठे ऊँघ रहे थे। रोहू उसी से सहारा लेकर दम ले रहा था।

मेझुकी जा कर धार महारानी के बाल सँभालने लगी। फिर उसकी आँखों मे आँखे डाल कर बोली. "क्या बात है महरानी, क्यों उदास है?"

'इसी तरह, मेझुकी, सिर कुछ भारी है। कई दिन से आराम नहीं किया न!" फिर कुछ रुक कर, जैसे कोई भेद की बात कह रही हो, "एक बात पूछूँ?" लहरें शात हो गयीं। सारा हड़म्-बेग क्षण-भर को रुक गया।

"यह आदमी के सीने मे पीठ सटाये डाँड़ सँभालने वाली कौन थी?"

"वह आदमी की आदि-शक्ति थी महारानी जी, मुरली! देखा आपने, किस तरह मौत से लड रही थी! भरी-पूरी थी न! बसंता के पत्थर-से सीने से पीठ अड़ाते-अडाते, उसकी गोद मे बैठ गयी थी। लेकिन आप क्यों...."

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, ऐसे ही पूछा। उसे तो आना ही है मेरी गोद मे।" धार जैसे बात टालते हुई बोली और मेझुकी उसके माथे की लटे हटा कर उसकी आँखों में देखने लगी।

चेल्हवा इस प्रसंग को सह नहीं पा रहा था, और झिंगवे को कब से उभाड़ रहा था, कि चल कर महारानी से सब बताओ। वह उछल कर धार के आगे आ गया, फिर कुछ रुक कर कहने लगा, "इस झिंगवे से मिलिए, महारानी! आदमी को खूब जानता है। इसने बडी अच्छीं बातें बतायी हैं।"

धार उठ बैठी। भिंगवे ने साष्टाग दंडवत् करते हुए कहा, "आदमी शक्ति से अजेय है, महारानी, उसे जीतने के लिए बुद्धि का प्रयोग करना होगा, कूटनीति चलनी होगी, उसी के बीच के आदमियो को फोड़ना होगा। उसकी संगठन शक्ति को भंग करना होगा।"

"हाँ, हाँ, महारानी! एक बात कहूँ" मेकुकी बोली, "आज मुरली अपनी माँ को लेने रात मे भितरी गॉव जाएगी। उसे लहरे उधर ही रोक लें, तो बसता का साहस आधा हो जाएगा।"

धार जैसे इस समय भिंगवे ही को सुनना चाहती थी, "तो तुम्हारा क्या खयाल है?"

'यही कि किनारों पर बसे आदमियो मे बहुत-से उँची जाति के लोग है, जो आपके आतंक से परेशान है, और उन पर प्रभाव इसलिए है कि आपके सीधे मार्ग को वे छोटी जाति के लोग हमेशा के लिए रोक कर बैठ गये है। आप सीधे मार्ग से जाना चाहे, तो वे आपका साथ देंगे।" भिंगवा बोल ही रहा था कि घड़ियाल ने वहीं मुँह बाया और फिर समा गया। धार ने गुस्से मे घड़ियाल के मुँह पर एक झापड़ मारा और वह बेचारा वहीं पानी मे डूब गया। पानी जोर से उछला और झार-झंखाड़ इधर-उधर छिटक गये।

रोहू को ले कर मेढक भीतरी गाँव के घाट पर जा बैठा। एक बूढ़ी अपना घड़ा भरते-भरते, किनारे पर बैठी बरतन माँजनेवाली दूसरी औरत से बोली, "बड़ा गड़बड़ सुन रही हूँ, जानकी! गाँव के बडे पंडित मलहटोली की कंकड़वाली छत पर फावड़ा चलवाना चाहते हैं।"

"फावड़ा?"

"हाँ, बसता को किसी उपाय से हटा कर वहाँ से धार को सीधा रास्ता दिलवा देना चाहते है। कुछ तैयारी भी देख रही हूँ। आज तो लच्छन और खराब हैं! करिया बादर चढा आ रहा है। जाने कैसे घर पहुँचना होगा। पानी जाने कब गाँव के ऊपर से बहने लगे।"

मेढक टर्-टर् करता भागा। रोहू ने पीछा किया और दोनों हॉफते-हाँफते धार के पास पहुँचे। पूरी सहचर मंडली आज रात की चढ़ाई के लिए तैयार हो रही थी। सोइस बार-बार कगार पर अपने सूँड़ मार आयी थी। डेड़हे ने नाव की संधि का अंदाज लगा लिया था और कछुई बसता के साथियों की पूरी तैयारी का भेद महरानी को बता चुका थी। घड़ियाल लहरो की मदद से ऊपर चढ कर, उस बबूल पर चिपके आदमी को उदरसात कर अपनी बहादुरी का रोब जमा चुका था। पवन ने थोड़ा कोण बदल कर, वृक्षों की जडो पर दूसरी ओर से धक्का पहुँचा, सारी वनस्पति उखाड़ फेंकने का बीडा उठा रखा था, और वरुण ने आदमी को कहीं भी न जा सकने देने का व्रत ले लिया था।

मेढक को देख कर लोग रुक गये। हाऽऽहाऽऽ-आऽऽ आऽ--की ध्वनि थोडी कम हो गयी, तो मेढक ने सारी दास्तान सुना डाली, और रोहू ने महरानी को एक बार उस भितरी गाँव को एक डुबकी दे कर, फिर पीछे हट आने और इस तरह आदमी को डरा कर, अपने साथ ले कर, आदमी से लड़ा देने की सलाह दे दी।

लहरें बढ़ीं, हर्र्-हर्. हुरुर्-हुर्.. करके, जैसे समताल पर किसी सिद्ध नर्तकी के घुँघरू बज उठे हों। धीरे-धीरे पवन ढुरका और वरुण ने ऊपर से भितरी को डुबो दिया। धार ने सँभाल कर धक्का दिया,

और जमीन की पीठ पर से मील-भर मे लहरे दूसरी ओर उतरने लगीं। सब-कुछ धुल गया। घर-बखरी कुछ नहीं, आदमी-जानवर, कुछ नहीं। जो बचे थे एक टीले पर कीड़ो की तरह बिलखने लगे, और साँप बिच्छुओं के साथ बैठ कर, अँधेरा काटने के लिए, धार से विनती करने लगे। कोई शोर-शराबा नहीं, केवल मनुष्य का चीत्कार। धार उनसे खेलती रही। तभी मेझुकी छटक कर आयी और कहने लगी, "इस किश्ती को देखती है, महरानी, इस पर मुरली आयी है, टीले से अपनी माँ को लेने।"

धार आँख फाड़ कर देखने लगी।

"बसंता से इसकी मँगनी हो गयी है। शादी तो अभी बाकी है। माँ बडे पडित के घर काम करती है।" धार सुनती रही, सुनती रही, फिर एकाएक कटकटा कर झपटी और आम के पेड के साथ किश्ती को उठा कर लहरों मे दूर गाड़ आयी और मुरली को बहुत दूर तक सिर के बल डुबोये, दूसरी ओर झोंक आयी। घड़ियाल मौका पा कर दौड़ा, पर पहिना ने आदमी के तैरने-सी ध्वनि करके, उसे कहाँ-का-कहाँ पहुँचा दिया। और मुरली एक लकड़ी के मोटे कुंदे के साथ, तैरती-तैरती दूर जमीन की रीढ पर पहुँच गयी।

धार हँसती हुई लौट गयी। लहरें किलकारी मारने लगीं। आदमी की आवाज डूब गयी।

"बसंता मुरली को खोजने जाएगा। ठीक उसी समय, महरानी जी!" मेढक जी मंत्रोच्चार करते हुए बोले।

चारों ओर कोहराम मच गया। कई किश्तियों पर आदमी-जानवर ला कर ज़मीन पर उतारे जाने लगे। सरकारी मोटरबोट पंडित जी के आदमियों को मलहटोली मे उतारने लगा।

बसंता के हाथ शिथिल हो गये ! बार-बार मुरली का ध्यान उसे सताने लगा, पर वह बेडे को कड़ा किये, अपनी बल्लियाँ सभाले, बजरी की अधपकी लिट्टियों पर नमक छिड़क कर खाता रहा। उसी समय पानी में तीर की तरह तैरती दो किश्तियाँ आयीं और एक बेहोश बच्चा बसंत को थमाते हुए एक मल्लाह कहने लगा, "फुटहवा तैयार हो गया है, किनारे तक इधर-उधर से मिट्टी निकाल दी गयी है। ज़रूरत पड़ते ही पानी काट दिया जाएगा।"

"बहुत ठीक, पर मुरली और उसकी माँ का कुछ पता नहीं चला।"

"मै देखता हूं।" किश्ती पानी को काटती हुई लौट गयी।

मेढक सब सुन रहा था। ठठा कर हँसा, तो बसंता ने डाँड को पानी पर छप् से मारा, और वह गुड़प से पानी मे डूब गया। उसी समय डोंगी लौटी और मंगू ने रो-रो कर मुरली के बह जाने का समाचार दिया। पंडित के कई आदमी बेंड पर आ कर समाचार की पुष्टि करने लगे, और बसंता को इस बात के लिए उभारने लगे कि वह बेंड को छोड़ कर मुरली को देखे।

बसंता भी रुकने वाला नहीं था।

चेल्हवा छटकता हुआ गया और महारानी के कान मे फुस-से कुछ कह कर लौटा ही था कि लहरें सिमट कर एक ओर चढ़ गयीं। सरकारी मोटरबोट लहरों के पूरे मार्ग को मोड़ कर कगार की ओर किये निश्चल खड़ा हो गया था।

हुड़-हुड़....हुड़ुम्-हुड़ुम्-हुड़ुम् ! और सारा बेड़ा टूट कर बिखर गया। कई किश्तियाँ टूट कर, चूर-चूर हो गयीं। लहरों के ज़बरदस्त

धक्के एक पर एक आ कर ककरीट की छत से लडने लगे। बेडे के मल्लाहों मे हाहाकार मच गया। लोग नाव पर से उतर कर भागने लगे। कगार हडम्प्-हडम्प्. छप्-छप् गिरने लगे। ऊपर पडित के किराये के आदमियो के फावडे चलने लगे और बेडे की बची-खुची किश्तियाँ भी एक-दूसरे से अलग कर दी गयी। कई तो धार के अट्टहास के साथ, पेट के बल पानी मे उछल-उछल कर गिरती रहीं। चेल्हवा और सिधरी नाच-नाच कर, विजयोल्लास प्रकट करने लगे। वरुण झूम-झूम कर बरसने लगा और पवन ने पल-भर मे सारे पेड़-पौधो को उखाड़ कर लहरो के हवाले कर दिया।

पर यह क्या? धार शिथिल होने लगी। लहरे जैसे शराब के नशे मे लड़खड़ा कर गिरने लगीं। सोइस का कगार से लगा मुँह बार-बार पीछे हटने लगा। डेड़हा लहरो मे बह कर किनारे से दूर मुड़ गया। वरुण कर्महीन-सा मछुओ की एक नन्हीं किश्ती की छत पर पड़्-पड़् अपनी बूँदे बरसाने लगा, जिसके नीचे आग की लपटों के किनारे एक सोलह वर्ष की स्वस्थ युवती, अपने भीगे कपड़ों को बार-बार अपने स्तन पर से उचार कर, अपने को छिपाने की कोशिश कर रही थी, और बसंता डॉड मारता, ललकार रहा था, "और चौड़ा करो, फुटहवा के मुँह को काट कर, धार के लिए रास्ता बना दो!" पचासों फावडे साथ चल रहे थे। नाले का मुँह चौड़ा किया जा रहा था और लाचार लहरें उससे ढुरक कर दूसरी ओर चली जा रही थीं।

धार बार-बार अपने को समेटती, लहरों की प्रत्यंचा को कानों तक चढ़ाती, पर छूटते ही जैसे तीर असक्त-से लड़खड़ा कर टूट जाते, उसी फुटहवा मे मुड़ कर समाप्त हो जाते। छल-छल की ध्वनि के बाद